365

राष्ट्र देवो भव ओ३म्

सार्वदेशिक

साप्ताहिक

आर्य

थिक

धर्म

और

लेख

र्य

से

ऋषि चरणों में

धर्मवीर

श्री पं० लेखराम जी

दि० १७ मई १८८० अजमेर में उपस्थित होकर संशय निवारण कर वैदिक धर्म-प्रचार करते हैं और १८९७ में एक आततायी द्वारा वेद प्रचार की वेदी पर बलिदान हो जाते हैं

आर्य पथिक लेखराम के लेखक

अमर हुतात्मा

श्रीस्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज

जो धर्मवीर के साथ

१६ वर्ष तक निरन्तर वैदिक धर्म

प्रचार में लगे रहे।

❀ ओ३म् ❀

आचार्य देवो भव ज्ञान देवो भव

सार्वदेशिक साप्ताहिक

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दूरभाष—२७४७७१
महर्षि दयानन्द भवन, नई दिल्ली-१ वर्ष ३—अंक २०

सम्पादकः—
सभा-मन्त्री
रामगोपाल शालवाले
संसद् सदस्य

सहसम्पादकः—
रघुनाथप्रसाद पाठक

२०२५ विक्रमी
दयानन्दाब्द १४४
रविवार, ३१ मार्च १९६८

वार्षिक—सात रुपये
एक प्रति—१५ पैसे

यह अङ्क
६० पैसे

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन् ।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन्वशे ॥

(यजु० अ० ३१ । २१)

संस्कृतभावार्थः—

इदमेवाऽऽद्यं विद्वत्कृत्यमस्ति यद्वेदेश्वरधर्मादिषु रुचिरुपदेशाध्यापनधार्मिकत्वजितेन्द्रियत्व-शरीरात्मबलवर्द्धनमेवं कृते सति सर्वे दिव्या गुणा भोगाश्च प्राप्तुं शक्याः ॥

हिन्दी भावार्थः—

यही विद्वानों का पहला कर्त्तव्य है कि जो वेद ईश्वर और धर्मादि में रुचि, उपदेश, अध्यापन, धर्मात्मता, जितेन्द्रियता, शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाना, ऐसा करने से ही सब उत्तम गुण और भोग प्राप्त हो सकते हैं ॥

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

सम्पादकीय—

धर्मवीर पं० लेखराम के जीवन से प्रेरणा लें

सार्वदेशिक के विशेषांक के रूप में स्वर्गीय श्री महात्मा नारायण स्वामी लिखित 'विद्यार्थी जीवन रहस्य' को एक लाख की संख्या में छापने का हमें अवसर देकर आर्य-जनता ने जिस महान् ऐतिहासिक कदम का सूत्र पात किया है उसी से प्रेरित होकर पाठकों के हाथ में हम यह नया विशेषांक प्रस्तुत कर रहे हैं।

ऋषि दयानन्द के पश्चात् जिन तेजस्वी, वैदिक धर्म की लगन से ओत-प्रोत और अपने जीवन को वैदिक धर्म के प्रचार में ही अहर्निश लगा देने वाली विभूतियों का वरदान प्रभु की कृपा से आर्यसमाज को मिला उसी का यह प्रताप था कि आर्यसमाज दिन दूनी रात चौगुनी गति से आगे बढ़ता रहा। आर्यसमाज के अंकुर को विशाल वट-वृक्ष का रूप देने और उसे अपने जीवन-रस से सींचने का श्रेय जिन महापुरुषों को प्राप्त है उनमें तीन व्यक्ति सबसे आगे गिने जाने के योग्य हैं। ये तीन व्यक्ति थे महात्मा मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द), धर्मवीर पण्डित लेखराम, और पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी। ये तीनों व्यक्ति समकालीन तो थे ही, आर्यसमाज के कार्य की दृष्टि से परस्पर पूरक भी थे।

धर्मवीर पण्डित लेखराम ने अपना उपनाम आर्य मुसाफिर रखा था और सचमुच ही धर्म प्रचार के लिए जितना सफर इन कोकरना पड़ा इसकी तुलना नहीं। शास्त्रार्थों के लिए, विधर्मियों

की शुद्धि के लिए और वैदिक धर्म के सिद्धान्तों के प्रचार के लिए जैसी लगन धर्मवीर पं० लेखराम में थी वैसी लगन आज भी आर्य समाज के उपदेशकों के लिए स्पृहणीय आदर्श बनी हुई है। प्रारम्भ में उनकी शिक्षा बेशक बहुत अधिक नहीं थी, परन्तु पुष्पों से रस इकट्ठा करके छत्ते में मधुर मधु का कोष जमा करने वाली मक्खी की तरह उन्होंने लगातार स्वाध्याय और अपने परिश्रम से ही अपना ज्ञानकोष तैयार किया था। पठानों के इलाके सीमा प्रांत में जन्म लेने वाले दीर्घ और परिपुष्ट काया के इस व्यक्ति को जब वैदिक धर्म की लगन लगी तब जीविकार्जन के अन्य सब लाभदायक धन्धों का प्रलोभन छोड़कर यह व्यक्ति केवल २५ रु० मासिक पर चिरकाल तक अपना निर्वाह करता रहा और अपने त्याग तथा तपस्या से उस ने उन ब्राह्मणों को भी मात कर दिया जिनको त्याग और तपस्या के गुण, वंश-परम्परा से प्राप्त होते हैं।

केवल वाणी से ही नहीं, परन्तु अपनी लेखनी के द्वारा भी वे विधर्मियों के मतों का खण्डन और वैदिक धर्म के सिद्धान्तों का मण्डन अविराम गति से करते रहे। इस काम में उन्होंने अपनी लेखनी को कभी विराम नहीं दिया और अपनी शहादत के बाद भी अपने पीछे आर्यसमाज के लिए यही सन्देश छोड़ गए—'लेख का काम कभी बन्द न होने पाए।" जैसे इस सन्देश के द्वारा भी वे अपने 'लेखराम' नाम को सार्थक कर रहे हों! 'कुल्लियात आर्य मुसाफिर' के नाम से उनके लिखे ग्रन्थों का संग्रह आज भी परमत खण्डन और स्वमत-मंडन की बेजोड़ कृति है और शास्त्रार्थ करने वालों के लिए तो वह सर्वथा अपरिहार्य है ही।

धर्मवीर पं० लेखराम की पत्नी भी अपने पति के समान ही आदर्शों की उपासक थी। धन की होड़ के इस युग में जब

यह पता लगता है कि अपने पति के स्वर्गवास के पश्चात् जब उसे दो हजार रु० की जीवन बीमा की राशि मिली तो उसने वह राशि भी गुरुकुल कांगड़ी के कोष में जमा करवादी ताकि आर्य-पथिक के स्मारक के रूप में सदा एक विद्यार्थी वहां पढ़ता रहे, और अपने भावी जीवन-निर्वाह की रत्ती भर चिंता भी नहीं की, तो उसकी त्याग-वृत्ति को देखकर पांवों तले उंगली दबानी पड़ती है।

धर्म के लिए शहीद हुए पं० लेखराम की जीवनी लिखने वाले महात्मा मुन्शीराम को यह क्या पता था कि भविष्य में उन्हें भी किसी विधर्मी की गोलियों का शिकार होकर 'आर्य-पथिक' द्वारा दिखाए गए पथ का ही पथिक बनना पड़ेगा। अमर-हुतात्मा के मनोगत भावों को जितनी अच्छी तरह दूसरा हुतात्मा समझ सकता है उतनी अच्छी तरह और कोई नहीं समझ सकता। 'खग ही जाने खग की भाषा।' शहीद की जीवनी और शहीद के द्वारा लिखी गई! जैसे सोने पर सुहागा हो गया। यह लीजिए, स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा लिखित अमर शहीद धर्मवीर पण्डित लेखराम की यह जीवनी "सार्वदेशिक" के विशेषांक के रूप में सादर आपके हाथों में समर्पित है। इसे पढ़िए और स्वयं धर्मवीर के जीवन से कुछ तो प्रेरणा ग्रहण कीजिए।

आवश्यक निवेदन—

यह अङ्क ५० पैसे में भेंट करना चाहते थे किन्तु कतिपय कारणों से ६० पैसे में प्रकाशित करना पड़ा, अन्यथा सभा को आर्थिक हानि होती। कृपया ६० पैसे के हिसाब से धन भेजें।

—प्रबन्धक

❀ ओ३म् ❀

आर्य्य पथिक लेखराम का जीवन वृत्तान्त

आर्यसमाज के परिमित चक्र में तो कोई ही ऐसा बेपरवाह आलसी होगा जो आर्य्य पथिक के नाम तथा काम से परिचित न हो, किन्तु आर्यसमाज से बाहर भी करोड़ों मनुष्यों ने लेखराम का नाम सुना है। वीर लेखराम के जीवन की अन्तिम घटना यदि क्षुब्ध न होती तो सम्भव था कि उनकी अर्थी के साथ ३० सहस्र के स्थान में तीन सहस्र जनसंख्या भी न होती, ऐसी अवस्था में सम्भव है कि आर्यसमाज की परिधि से बाहर उसको जानने वाले भी कम होते, किन्तु फिर भी उसके जीवन में ऐसी विचित्र घटनाओं का प्रादुर्भाव हुआ, जिनसे उसका जीवन वृत्तान्त सर्व साधारण के लाभार्थ प्रकाशित करने की आवश्यकता होती।

जन्मस्थान

जन्मभूमि को जननी कहना कुछ अनुचित नहीं क्योंकि जिस प्रकार गर्भ में स्थित सन्तान पर माता के गुण, कर्म तथा स्वभाव के संस्कार पड़ते हैं वैसे ही जन्म-भूमि के जल, वायु तथा प्राकृतिक दृश्यों का भी आश्चर्य जनक प्रभाव मनुष्य के जीवन पर पड़ता है। लेखराम का जन्म एक ऐसे स्थान में हुआ जहाँ का जल वायु पुष्टिकारक तथा जहां के बाह्य दृश्य मन को उत्साहित करने वाले थे। पंजाब में झेलम का जिला जानदार-

घोड़िया उत्पन्न करने वाले धन्नो प्रान्त की दक्षिणी हद पर स्थित है, उसमें चकवाल की तहसील प्रसिद्ध है। खास चकवाल उपनगर से आठ कोस पूर्व की ओर ऊंची सतह पर सैदपुर (सय्यदपुर) नामी एक ग्राम है। इस ग्राम के तीनों ओर कस अर्थात बरसाती नदियाँ बहती हैं। ग्राम की पूर्वी सीमा वाली नदी का नाम काशी है। इस नदी का स्रोत रामहलावां नामी पहाड़ी से आरम्भ होता है, जिसके विषय में प्रसिद्ध लोकोक्ति है कि वनवास के समय पाण्डव कुछ काल तक इस स्थान में खेती करके दिन बिताते रहे। रामहलावां पहाड़ी हिन्दुओं के प्रसिद्ध तीर्थ कटाक्षराज के पास ही है, इसी कारण नदी का नाम काशी पड़ा होगा। दूसरी नदी का नाम सुर है जिसे पण्डित लेखराम जी 'सरस्वती' का अपभ्रंश बतलाया करते थे। इस नदी का स्रोत "करङ्गली" नामी पहाड़ी से निकलता है और सय्यदपुर के दो ओर होता हुआ काशी से जा मिलता है। दक्षिण और पूरब के कोने की ओर बराबर एक हरी भरी गिरिमाला जाती है जिसका नाम "दरेगश" और 'दल जव्वा' है। इस ग्राम की आबादी ३०० घरों से अधिक न थी, किन्तु ग्राम निवासी प्रायः खाते-पीते खुशहाल थे। सिक्खों के राज्य में इस ग्राम की ऊंचाई पर एक पहाड़ी गढ़ भी था; जिसे सरदार उत्तमसिंह आहलूवालिया ने बनवाया था। उस गढ़ के एक दो बुर्जों के अब चिह्न मात्र ही शेष रह गये हैं, बाकी सब कुछ बरसाती नदियों की भेंट हो चुका है।

वंशावलि

यद्यपि पण्डित लेखराम का जन्म सय्यदपुर में हुआ तथापि उनका वंश पहले पोठोवार का निवासी था। रावलपिंडी का जिला पोठोवार का गढ़ है; उसके कहूटा नामी ग्राम में लेखराम

के पुरुषा निवास करते थे। कहूटा भी प्राकृतिक दृश्यों से शून्य स्थान नहीं है किन्तु उसका वर्णन इस समय करने की आवश्यकता नहीं। यहाँ इतना ही लिखना पर्याप्त है कि लेखराम के दादा महता नारायणसिंह के पिता पहले पहल पोठोवार से अपने ससुराल के ग्राम सैय्यदपुर में आ बसे थे। उनके दो पुत्र थे जिनमें एक नारायणसिंह थे। नारायणसिंह के दो पुत्र उत्पन्न हुए, बड़े का नाम महता तारासिंह और छोटे का नाम महता गण्डाराम जो पेशावर में डिप्टी इन्सपेक्टर थे और अब पेन्शन लेकर रावलपिण्डी में निवास करते हैं। बड़े महता तारासिंह के घर तीन पुत्र तथा एक पुत्री उत्पन्न हुए। सबसे बड़े का नाम लेखराम, दूसरे का तोताराम और तीसरे का बालकराम रक्खा गया। पुत्री सबसे छोटी थी जिसका नाम मायावन्ती रखा गया था। लेखराम वर्तमान जाति भेद के विचार से ब्राह्मण थे इतना लिखना ही काफी है, इससे अधिक आन्दोलन की इस समय, जब कि वैदिक वर्ण व्यवस्था के पुनर्जीवित करने का विचार हो रहा है कुछ भी आवश्यकता नहीं, फिर भी इस विषय का विशेष वृत्त मनोरञ्जक ही होगा।

पैत्रिक संस्कारों का प्रभाव

लेखराम के प्रपितामह का नाम 'प्रधान' था। यह शाण्डिल्य गोत्रज सारस्वत ब्राह्मण कुल में से एक साधारण पुरुष थे। इनके विषय में कुछ विशेष हाल मालूम नहीं हुए परन्तु आर्य पथिक के दादा नारायणसिंह के जीवन पर एक दृष्टि अवश्य डालने की आवश्यकता है, क्योंकि लेखराम के जीवन में बहुत सी घटनाएं ऐसी उपस्थित हुई हैं जिनका गुह्य रहस्य पैत्रिक संस्कारों के ज्ञान विना प्रकाशित नहीं किया जा सकता। नारायण के साथ सिंह का योग ही सिद्ध करता है कि परशुराम

की तरह यह भी हर समय कहने को तैयार रहते थे कि—"केवल द्विज कर जानेस में हीं। मैं जस विप्र सुनाऊं तोहीं।" हम ऊपर लिख चुके हैं कि सय्यदपुर में सरदार उत्तमसिंह ने सबसे पहले गढ़ बनाया था। उनके पश्चात् यहाँ के हाकिम सरदार कान्ह सिंह मजीठिया हुए, जिनके यहाँ नारायणसिंह ने घोड़चढ़ों (सवारों) में नौकरी कर ली। नारायणसिंह बड़े दृढ़ पुरुष थे। उनका शरीर बलिष्ठ तथा हाथ पैर खुले थे। उनकी बहादुरी के कारण सरदार कान्हसिंह इन्हें बहुत माननीय समझते थे और प्रायः भोजन अपने साथ ही कराया करते थे। पेशावर में एक बार सरदार कान्हसिंह के साथ पठानों के सामने युद्ध में खड़े हुए थे जहां इनको बड़ा प्रबल घाव लगा। बन्दूक की गोली मुंह में लगकर दहने कान के पास होती हुई गर्दन में से बाहर निकल गई, किन्तु बहादुर नारायणसिंह ने मुख पर मलिनता तक को आने न दिया। जब निरोग हुए तो सरदार साहब ने सोने के कड़ों की जोड़ी देकर उनका मान किया। इसके पश्चात् भी कई लड़ाइयों में हाथ दिखा कर इन्होंने सिक्खों की नौकरी छोड़ दी। इनके जीवन की एक और विचित्र घटना यह वर्णन के योग्य है कि जब ब्रिटिश राज्य शासन के स्थापन होने पर प्रजा से हथियार ले लिये गये तो नारायणसिंह ने अपने हाथ से हथियार रखने को अपमान समझा और "पुंच्छ" के राज्य में जाकर अपने हथियारों को स्वयं बेच दिया। हम आगे चलकर लेखराम के जीवन मे अपने पितामह के दृढ़ सङ्कल्पों का प्रभाव देखेंगे। अपने बड़े पुत्र तारासिंह के विवाह के पश्चात्, जो सम्वत् १६१२ में हुआ, नारायणसिंह कश्मीर के सरदार हाड़ासिंह जी के यहां कोठारी नियत होकर चले गये और वहाँ से लौट कर उनका देहान्त सम्वत् १६२५ में सय्यदपुर ग्राम के अन्दर हुआ।

नारायणसिंह के छोटे भाई श्यामसिंह थे। यह बाल ब्रह्मचारी ही रहे और सिक्खों के राज्यकी समाप्ति पर साधु होकर विचरते रहे। इनका देहान्त सम्वत् १६२८ विक्रमी में हुआ जब लेखराम कुमारावस्था से आगे पग धरने लगे थे और यदि हम यह अनुमान करें, कि लेखराम के आगामी धार्मिक जीवन पर इनके दृष्टान्त का कुछ प्रभाव पड़ा तो कुछ अनुचित न होगा।

जन्म तथा बाल्यावस्था

लेखराम का जन्म ८ चैत्र सं० १६१५ वि० को शुक्र के दिन सय्यदपुर ग्राम में हुआ। छः वर्ष की आयु में ही इनको देहाती मदरसे में उर्दू फारसी पढ़ने के लिए भेजा गया। पञ्जाब में चिरकाल से फारसी का राज्य हो चुका था। खालसा पन्थ के राजशासन से पहले लाहौर मुसलमान राज्य प्रतिनिधियों का गढ था। कई समयों में दिल्ली के बादशाह स्वयं लाहौर में निवास किया करते थे। न्यायालयों का सर्व काम हिन्दू राज्य कर्मचारी भी फारसी में ही किया करते थे। देवनागरी अक्षरों का किञ्चिन्मात्र भी प्रचार न था; और होता कैसे जब सरकारी नौकरी से बढ़ कर कोई मान्य का स्थान न समझा जाता था और सरकारी नौकरी में उन्नति प्राप्त करने के लिए आवश्यक था कि फारसी भाषा में उत्तम योग्यता सम्पादन की जावे। उन दिनों ५) मासिक पाने वाला घाट का मुहर्रिर भी अपने आपको "अहले कलम" कहकर उपजकी लेता था और लखपति साहूकारों तथा सैकड़ों की मालगुजारी भुगताने वाले जमींदारों को अपनी प्रजा समझता था। ऐसे समय में एक ब्राह्मण कुलोत्पन्न बालक के लिए भी देवनागरी लिपि सिखाने और संस्कृत भाषा पढ़ाने का विचार किसके दिल में उत्पन्न हो सकता था ? किन्तु फिर भी मालूम होता है कि लेखराम के

हृदय में अपने धर्म के दृढ़ संस्कार छुटपन से ही स्थिर हो चुके थे। अपने धर्म की कथायें उन्होंने कहाँ से सुनीं और उन पर दृढ़ता कैसे हुई, इसका कुछ पता नहीं चलता, किन्तु स्पष्ट यह है कि लेखराम के चित्त पर धार्मिक घटनाओं का प्रभाव बहुत शीघ्र पड़ा करता था।

अभी अक्षराभ्यास ही हुआ था कि शिक्षा विभाग का चीफ मुहर्रिर परीक्षा लेने को आया और लेखराम की हाजिर जवाबी से ऐसा प्रसन्न हुआ कि उसे विशेष पारितोषिक का पात्र समझा। सं० १९२६ में, जब लेखराम की आयु ११ वर्ष की थी, उसके चाचा गण्डाराम पेशावर पुलिस में एक स्थिर स्थान पर नियत हो गये और उन्होंने लेखराम को अपने पास बुला लिया। इस स्थान में लेखराम को कई अध्यापकों के पास पढ़ने के लिये जाना पड़ा। अध्यापक यतः मुसलमान होते थे इसलिए मुसलमानी मत के संस्कार लड़के के दिल पर बैठाने का प्रयत्न करते थे परन्तु लेखराम की शङ्काओं से इतने तंग आ जाते थे कि पढ़ाने से जवाब देकर चल देते। फिर लेखराम के चचा पेशावर से बाहिर के थानों में बदल गये, लेखराम भी उनके साथ गया। इस समय की एक घटना लेखराम के भविष्यत् जीवन का परिचय देती है। अपनी चची को एकादशी का व्रत बड़ी श्रद्धा से रखते देखकर आपने भी उपवास करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। चची ने यह कह कर समझाया कि बच्चे भूख को सहन नहीं कर सकते,हठ को छोड़ देना चाहिये। दृढ़-संकल्प लेखराम ने एक न मानी और नियम पूर्वक एकादशी के दिन उपवास करना आरम्भ कर दिया। जिनके पैत्रिक संस्कार ऐसे दृढ़ हों, उनको उत्तम शिक्षा किस उच्च अवस्था पर पहुंचा सकती है इसके सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

शिक्षा का प्रभाव

इस समय जब मनुष्य-शिक्षा सम्बन्धी आन्दोलन में दिनों दिन उन्नति हो रही है और जब कि शताब्दियों के पक्षपात छिन्न भिन्न करके यूरोपियन शिक्षक आर्यों की प्राचीन विद्या से उपदेश ग्रहण करने में भी अपनी कुछ हतक नहीं समझते, यह कल्पना करना कठिन है कि आज से ३४ वर्ष पहिले पंजाब देश में सारी शिक्षा की समाप्ति कुछ फारसी के लिखे हुए पत्रों के साथ ही हो जाती थी। लेखराम को शारीरिक शिक्षा, वर्त्तमान सरकारी शिक्षा विभाग के कृत्रिम नियमानुसार, कुछ मिली वा नहीं इसका पता लगाना कठिन है, किन्तु उनका चौड़ा माथा, उनका खुला विशाल सीना, उनकी सिंह ठवन इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण थी कि ईश्वरीय नियमों की गोद में पले हुए बच्चों की शारीरिक अवस्था वैसी ही स्वाभाविक होती है जैसे कि ईश्वर के ज्ञान, बल और क्रिया स्वाभाविक हैं। लेखराम को मानसिक शिक्षा क्या मिली ? इस प्रश्न के उत्तर के लिए बड़े आन्दोलन की आवश्यकता नहीं। अपने चचा महाशय गण्डाराम जी के पास यह चौदह वर्ष की आयु तक रहे; उसके पश्चात् सय्यदपुर चले गये और वहाँ के देहाती मदरसे में शिक्षा लाभ करने लगे। इस देहाती मदरसे के मुख्याध्यापक मुंशी तुलसीदास थे। लेखराम ने जो कुछ भी किताबी तालीम हासिल की वह इन्हीं की बदौलत थी। मुंशी तुलसीदास पुराने ढर्रे के स्वतन्त्र विचार वाले आदमी थे। इनका स्वभाव मस्त फकीरों का सा था, किन्तु साथ ही हृदय बड़ा ही पसीजने वाला और दूसरों के दुःख को अनुभव करने वाला था। मुंशी तुलसीदास आदमी को पहिचानने की शक्ति रखते थे। कवि ने सच कहा है: —

"आदमी आदमी अन्तर, कोई हीरा कोई कङ्कर"—किन्तु यह पता लगाना, कि हीरा कौन है और कङ्कर कौन, साधारण पुरुषों का काम नहीं।

किसी पुरुष विशेष की मानसिक उन्नति का पता लगाने के लिए उसकी लड़कपन की अवस्था के निरीक्षण करने वालों की सम्मति बहुत सहायता देती है। जहाँ लेखराम के प्रथम चौदह वर्ष के जीवन का ठीक वृत्तान्त उनके चचा महाशय गण्डाराम के लेखों से मिलता है, वहाँ उसके पश्चात् उनके शिक्षण सम्बन्धी जीवन तथा उनके मानसिक विकास का पता मुंशी तुलसीदास चकवाल निवासी उभ्रा खत्री वंशीय के लेखों से पता लगता है। मुंशी तुलसीदास का महाशय गण्डाराम के साथ बराबर पत्र व्यवहार था। उनके पत्रों से लेखराम के विस्तृत होते हुए गुण, कर्म, स्वभाव का ठीक पता लगता है। किन्तु उन पत्रों में से लेखराम के जीवन सम्बन्धी लेखों को उद्धृत करने से पहिले मैं उनका उस समय का लेख इस स्थान में नकल करता हूं जो लेखराम के महान् आत्म समर्पण का समाचार सुन कर उन्होंने मुद्रणार्थ भेजा था। वह लिखते हैं:—

"स्वर्गवासी पण्डित जी अपने दोनों छोटे भाइयों (तोताराम और बालकराम) सहित मेरे पास तालीम पाते रहे। धर्म पर शहीद होने वाले पण्डित जी का (आकार) दर्मियाना, सांवला रङ्ग, कुशादा (खुली) पेशानी, सियाह चश्म (पीछे एक आँख में कुछ विकार सा बैठ गया था) हंसमुख थे। उस समय उनकी आयु १४ वा १५ वर्ष की होगी। बड़े सरल हृदय थे। कुरते की घुण्डी खुली है तो वैसी ही रही, पगड़ी का लड़ गले में है तो कुछ परवाह नहीं, किन्तु स्वभाव ऐसा तीक्ष्ण और स्मरण शक्ति ऐसी पहुंचने वाली कि कठिन से कठिन फारसी के पाठ को

दोबारा उन्होंने कभी नहीं कहा था। जो पूछो नोक जबान होता था। हिसाब में यकता, कसस-ए-हिन्द (भारत का इतिहास) उपस्थित इत्यादि। केवल गुलिस्तां पूरे आठ बाब और बोस्तान पूरे दस बाब नियमपूर्वक पण्डित साहब ने मुझसे बातकींव पढ़े। फिर बहारदानिश आधी से अधिक कुछ सिकन्दरनामा, और मुन्तखबात-ए-फारसी, जिसमें अनवार सुहेली, सिकन्दर-नामा, शाहनामा का कुछ इन्तखाब था। मगर इन किताबों की शिक्षा में यह हाल था कि दो-दो पत्रे उलटने पर शायद ही कभी कोई शब्द मुझसे पूछा हो, खुद ही उनकी सैर में किश्ती बर आब की तरह तैरते जाते थे"। मुन्शी तुलसीदास जी के पत्र व्यवहार से कुछ लेख तिथिवार उद्धृत करना इस स्थान में बड़ा उपयोगी होगा—"चिरञ्जीव लेखराम जी रात के दस बजे तक मेरी कुटिया में रहता है। बहार दानिश में नजर सानी (पुनरावृत्ति) करता है। इस मदरसे में अपना सानी (बराबरी का) नहीं रखता। बर्खुरदार है" १६ फरवरी, सं० १८७१ ई०—"लेखराम मानीटर हो गया।"

१० अगस्त स० १८७३ ई० "मुन्शी लेखराम मानीटर साहब काम का तो नाम भी नहीं लेते, पढ़ाई का क्या जिक्र। अपनी जहूलत के शगल (कविता से मतलब है) से फुरसत नहीं पाते। खैर अब पहले की निसबत कुछ सुधार पर आ गये हैं।

८ दिसम्बर १८७३ ई०। "मुन्शी साहेब लेखराम आज तक अपनी जिहालत पर कमर बस्ता हैं। और तो सब कुछ रखते हैं मगर अक्ल (बुद्धि)। हाय अफसोस! अगर यह भी होता तो अन्दर बाहर आदमी होते।"

लेखराम के सम्बन्धी फकीरचन्द भी मुंशी तुलसीदास के पास ही पढ़ते थे। उनकी योग्यता की प्रशंसा करते हुए ८

फरवरी सन् १८७५ को उक्त मुंशीजी ने लिखा था—"लेखराम साहेब भी लेख तथा वक्तृत्व शक्ति में उनसे कम नहीं किन्तु तनेक बुद्धि की कसर है।" यह बार बार बुद्धि की कसर का जिक्र क्यों आता है और इससे अध्यापक का क्या मतलब है? आगे चलकर कुछ स्पष्ट हो जाता है।

२४ अगस्त स० १८७४ - "लेखराम की प्रकृति के बदलने की ओर हार्दिक ध्यान दीजिएगा। विद्या से विनय उत्तम है और अकल शकल से......" लेखराम की प्रकृति में दास भाव पहिले से ही न था, स्वतन्त्रता कूट कूट कर बाल बाल में भरी हुई थी। यही कारण था कि कई बार छात्रवृत्ति तथा पारितोषिक पाने पर भी वह कभी कभी सरकारी शिक्षा विभाग के बड़े कर्मचारियों को भी अप्रसन्न कर लिया करते थे।

इस समय के पहिले से ही लेखराम को कुछ तुकबन्दी का भी शौक हो चला था और फारसी तथा उर्दू के अतिरिक्त आप पंजाबी में भी तबियत लड़ाया करते थे। यद्यपि एक महाशय के लेख से ज्ञात होता है कि रिवाजी शृङ्गार रस की कविता की ओर भी लेखराम के दिल का झुकाव था परन्तु मुझे उनकी उस समय की लिखी हुई एक ही कविता मिली है; जिसका सदाचार के साथ सम्बन्ध है। आपने पंजाबी बैतुलबाजी हुक्के के विरुद्ध की है जो कवि के बल तथा निर्बलता दोनों का प्रकाश करती है।

"वे बाझ हुक्के नहीं चीज भैड़ी लख वदियां बाइबतदाऽहुक्का।
खङ्ग गर्मी ते सौदाऽसाह चारं रोग करे वरपाऽहुक्का।
जूठा चक्खना च ङ्गयां मन्दयां दा कोइ फायदा चादसालाऽहुक्का।
शून बूस वाङ्गण चिलमकश जित्थे बैठ करे ताजा जिस जाऽहुक्का।
गहर बाझ स्याही स्याह करे स्याही यही मुंहदे उत्ते मलाऽहुक्का।

चूवदतर है बाझ वौल थी भी बोल बोल छड्डे सीना खा हुक्का।
नेकमाश नू हुक्का बदनाम करदा वावने कदे बुरा कमाऽहुक्का।
एह ऐब मैं नेदिते गिन सारे कोई फाइदा नहीं बस बसाय हुक्का।
लेखराम बस बैठके नास जपज्ञो नड़ी अन्न के देखो उड़ाय हुक्का।"

शिक्षा समाप्ति तथा पुलिस की नौकरी

लेखराम के परिवार में चिरकाल से उच्चशिक्षा प्राप्त करने की प्रणाली प्रचलित न थी। इनके दादा तो सर्वथा अशिक्षित ही थे, हां इनके चचा गण्डाराम जी ने कुछ फारसी उर्दू में अभ्यास किया था जिसके अनुकरण मे उन्होंने भी इन्हीं भाषाओं का अच्छा अभ्यास कर लिया। किन्तु समय के प्रचलित विचारों के अनुसार सत्रह (१७) वर्ष की आयु वाले युवक का कर्तव्य था कि वह कमाई करके माता पिता को आर्थिक सहायता देवे, इसलिए इस आयु से पहिले ही इनको सरकारी नौकरी दिलाने की फिक्र हो रही थी। उस समय "निकृष्ट चाकरी" को ही अत्युत्तम तथा मानस्थानी समझा जाता था। "उत्तम खेती" को गिरा हुआ किसानी काम कहा जाता था, तभी तो महाशय गण्डाराम जी, उस समय जब कि लेखराम की आयु पूरे १६ वर्षों की भी न हुई थी, अपने भतीजे के गुरु को प्रेरित करते हैं कि वह इन्सपेक्टर मदारिस के पास लेखराम की नौकरी के लिए सिफारिश करे जिसके उत्तर में मुन्शी तुलसीदास लिखते हैं "अगर साहेब इन्सपेक्टर बहादुर तशरीफ लाए और इमतिहान भी अच्छा हुआ, तो मैं जरूर लेखराम की निसबत जबानी अर्ज करूंगा। आइन्दा उनकी किस्मत के तअल्लुक है।" सतरहवां वर्ष अभी समाप्त नहीं हुआ था कि लेखराम को चचा ने पेशावर पुलिस में भरती करा दिया। उस समय क्रूस्टी साहेब वहां की जिला पुलिस के सुपरिन्टेण्डेन्ट थे।

कैसी विचित्र घटना है कि जिन क्रस्टी साहेब ने लेखराम को पुलिस में भरती किया था, लेखराम के मारे जाने पर उन्हीं से मुझे घातक का पता लगाने के लिए विशेष प्रार्थना करनी पड़ी। क्रस्टी साहेब ने मुझे बतलाया था कि जहां उन्हें मालूम था कि लेखराम अपनी निर्भयता तथा स्पष्ट वक्तृत्व के कारण कभी न कभी मारा जायगा, वहां उसकी दृढ़ता के लिए उनके हृदय में सदा मान का भाव रहा करता था।

सम्वत १६३२ के पौष मास में २१ दिसम्बर सन् १८७५ ई० के दिन, लेखराम पेशावर पुलिस में भरती किये गये। पुलिस की नौकरी का वृत्तान्त न तो मनोरञ्जक और न ही शिक्षा-दायक हो सकता है। अढ़ाई साल पीछे १) मासिक की उन्नति और फिर प्रत्येक वर्ष के पीछे सारजन्टी के एक-एक दर्जे की उपलब्धि का विस्तार पूर्वक वृत्तान्त भी हमारे पल्ले कुछ नहीं डाल सकता। सम्वत् १६३७ तक बराबर वेतनोन्नति होती रही, किन्तु उस सम्वत् की समाप्ति के लगभग लेखराम के आत्मा में कुछ विचित्र परिवर्तन होने लगा। पुलिस में नौकर होने से पहिले ही, जब लेखराम अपने चचा के पास "सुआवी" में थे. एक धार्मिक सिक्ख सिपाही के सत्संग से उन्हें परमात्मा की उपासना का अभ्यास हो गया था। प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त्त में ही स्नान करके समाधि लगाकर बैठ जाते और दिन को गुरुमुखी अक्षरों में लिखी हुई गीता का पाठ करते। महाशय गण्डाराम जी लिखते हैं कि एक रात्रि को खटिया पर समाधि लगाये बैठे थे कि सब के देखते देखते खटिया से नीचे आ रहे। शिर नीचे और पांव खटिया के ऊपर हो गए, किन्तु इस अवस्था में भी वह अपने ध्यान में मस्त थे।

लेखराम के इस आरम्भिक ईश्वर प्रेम की अवस्था पर

पुलिस की नौकरी भी अपना कुछ असर न डाल सकी। संवत् १६३७ में फिर से वैराग्य की लहर उठी जिसने पुलिस की हकूमत और सांसारिक ऐश्वर्य का नशा हिरन कर दिया। इस समय लेखराम के विचार सर्वथा नवीन वेदान्तियों के साथ मिलते थे। अद्वैत में निश्चय रखते हुए भी इन्होंने उपासना को जवाब नहीं दिया था और इसी लिए आज कल के वेदान्तियों की तरह वह अद्वैत मत को सांसारिक विषयों के भोग का साधन बनाने का प्रयत्न नहीं करते थे। गीता पढ़ने का परिणाम यह हुआ कि कृष्ण भक्ति में अधिक श्रद्धा हो गई, और रासलीला देखने की ओर रुचि बढ़ी। टीके लगा कर "कृष्ण कृष्ण" का जप करते रहते। कृष्ण भक्ति में प्रेम इतना बढ़ा कि नौकरी छोड़कर वृन्दावन निवास के लिये जाने को तैयार हो गये। इस समय लेखराम की आयु २१ वर्ष की थी। माता ने विवाह की तैयारी कर दी परन्तु उस वैराग्य से प्रेरित हरि भक्त ने विवाह से सर्वथा इन्कार कर दिया। महाशय गण्डाराम जी इस विषय पर लिखते हैं कि जब पत्र द्वारा मने करने से कुछ न बना तो वह स्वयं लेखराम को समझाने के लिए गये। उस समय उत्तर में लेखराम ने जो दृष्टान्त दिया उसे महाशय गण्डाराम जी इस प्रकार वर्णन करते हैं—"एक मिसाल सुनाई वह यह है—"एक राजा के सामने नट तमाशा करने आये। उनको राजा ने ५००) रुपया इनाम देने की प्रतिज्ञा करके कहा कि योगी की नकल उतारो। एक नट ने इनाम के लालच से योगी की ठीक ज्यों का त्यों नकल उतारी किन्तु समाधि छोड़ते ही हाथ इनाम के लिए पसार दिया। मतलब इस मिसाल से यह था कि गृहस्थ में रह कर दो काम नहीं हो सकते हैं। तब हम सब निराश हो गये और जिस देवी का नाता लेखराम के

साथ हुआ था उसका विवाह उनके छोटे भाई तोताराम के साथ कर दिया।"

इन्हीं दिनों पण्डित लेखराम के पुराने उस्ताद तुलसीदासजी उन्हें मिलने के लिए पेशावर गये तो उनसे भी नौकरी छोड़कर संस्कृत पढ़ने के लिये देशान्तर जाने की इच्छा प्रकट की थी।

आर्यसमाज में प्रवेश और ऋषि दयानन्द का सत्संग

ऊपर लिखा जा चुका है कि पहिले पहिल वैराग्य की लहर दृढ़ संकल्प लेखराम के हृदय में एक नवीन वेदान्ती सिक्ख सिपाही के सत्संग से उठी थी। उसी लहर ने मन रूपी समुद्र के जल को विविध रूपों में बदल कर लेखराम को कहीं रास-लीला के भंवर में घुमाया और कहीं गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्यों से घृणा दिलाई। किन्तु लेखराम की बुद्धि एक जागृत शक्ति थी; उसकी दृष्टि में यह भ्रम ठहर नहीं सकता था कि जीवात्मा ही ब्रह्म है और इसलिए वह कभी भी अपने उस समय के धार्मिक विचारों से संतुष्ट नहीं हो सकता था। इस समय की दो घटनाएँ लेखराम के उस स्वभाव को, जो उसे पैत्रिक दाय में मिला था, बहुत विस्पष्ट करती हैं; इसलिए उनका वर्णन लाभदायक होगा।

पेशावर में नौकरी के दिनों अकेले होने के कारण आटा लेकर रोटी बनवाने तन्दूर वाले की दूकान पर जाया करते थे। एक दिन शहर में किसी आदमी को एक बैल या गाय ने सींगों से घायल किया जिसकी चर्चा सारे बाजार में फैल गई। तन्दूर वाले की दूकान पर भी यही चर्चा थी। पण्डित लेखराम तत्काल ही बोल उठे "क्यों न गाय के सींग पकड़ लिए? और नहीं तो लाठी मार कर हटा देना चाहिए था।" लोगों ने

कहा—"महाराज गौ माता पर कैसे हाथ उठाता ?" इस पर अक्खड़ लेखराम के होंठ फड़कने लगे, आँखें लाल हो गईं और अधिक अटक-अटककर बोले- "अगर मेरे सामने गाय या बैल आवे और मुझे मारने लगे और जान का खतरा हो तो मैं—तलवार से उसका सिर उड़ा दूं।" इतना कहना था कि लोगों ने "दुष्ट! हत्यारा! इत्यादि" दुर्वचनों का तूफान मचा दिया और तन्दूर वाले ने लोगों के जोश से डर कर आटा ज्यों का त्यों लौटा दिया।

एक ओर तो रुकावट सामने आने पर इतना अक्खड़पन और दूसरी ओर—एक और घटना सुनाता हूँ जिससे पता लगता है कि धर्म की जिज्ञासा ने उस तंग जमाने में भी लेखराम को उदार सार्वभौम हृदय का स्वामी बना दिया था। पेशावर से एक महाशय लिखते हैं कि पण्डित लेखराम के मित्र महता कृपाराम जी ने उन्हें महम्मदी मत की पुस्तकों को अधिकतः पाठ करते देखकर एक दिन पूछा कि आप मुसलमानी मजहब की पुस्तकों को इतना क्यूं पढ़ते हैं, क्या यदि महम्मदी मत आपको सच्चा लगे तो आप मुसलमान हो जायेंगे।" वहां उत्तर के लिए कुछ सोचने की आवश्यकता न थी; उत्तर मिला—"बेशक! अगर दस घड़े रक्खे हों और यह मालूम न हो कि ठण्डा पानी किस में है तो जब तक थोड़ा थोड़ा पानी सब में से न पिया जाय तब तक कैसे पता लग सकता है कि किस घड़े का पानी ठण्डा और मीठा है। इसी तरह सब मतों की पुस्तकों की पड़ताल करके पता लगाना चाहिए कि सच्चा धर्म कौनसा है।"

इन दो उक्तियों से ही पण्डित लेखराम के स्वभाव के उतराव-चढ़ाव का कुछ पता लग जाता है।

इन्हीं दिनों, जब गीता की सटीक पुस्तक काशी से मंगाकर उसे व्याख्या सहित पढ़ रहे थे पण्डित लेखराम को मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी की पुस्तकों के देखने का उत्कण्ठा हुई। तत्काल ही धर्म के प्यासे ने अलखधारी के सब प्रसिद्ध ग्रन्थ मंगा लिए जो पेशावर में आर्यसमाज स्थापन करते ही अपने अन्य ग्रन्थों सहित, उस आर्यसमाज के भेंट कर दिए। पेशावर आर्यसमाज के पुस्तकालय की सूची भी पण्डित लेखराम की ही लिखी हुई है, जिसमें ऋषि दयानन्द से मिली हुई अष्टाध्यायी के साथ-साथ "तोहफ़तुलइसलाम-', "पादाशुलइसलाम इत्यादि के नाम भी दर्ज हैं।

पंजाब में मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी के लेखों ने वैदिक धर्म के पुनर्जीवित करने में वही काम दिया जो ईसाई मत की स्थापना से पहिले "यहुन्ना"[Gohn the Baptis] के व्याख्यानों ने किया था। यदि क्रिश्चियन चर्च को ईसा का उपदेश समझाने के लिए यहुन्ना के व्याख्यानों की आवश्यकता थी तो आर्य-समाज को भी ऋषि दयानन्द के उद्देश समझने के लिए अलखधारी की प्रचण्ड चोटों की जरूरत अवश्य थी। उस समय के नवशिक्षित पंजाबी, और कुछ कुछ संयुक्त प्रान्ती भी, अलखधारी को अपना "पैगम्बर" और "राहबर" मानते थे। अलखधारी के खुले स्पष्ट शब्द कुरीतियों से पीड़ित आर्य सन्तान को उत्साहित करने और उन्हें अन्ध परम्परा की कड़ी सांकलों को तोड़ने का बल प्रदान करने में बिजली का काम देते थे; किन्तु फिर भी पुराने ढर्रे के पौराणिकों पर उनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता था। पौराणिक गढ़ को तोड़ने के लिए वेद-शास्त्र रूपी प्रबल शस्त्रों की आवश्यकता थी, जिनके चलाने में निपुण एक ही कौपीनधारी संन्यासी शताब्दियों के पश्चात्

दिखाई दिया था। अलखधारी ने उसी अखण्ड शस्त्रधारी बाल ब्रह्मचारी की शरण ली, और अपने लेखों की पुष्टि में स्वामी दयानन्द सरस्वती के व्याख्यानों और लेखों का प्रमाण दिया। यही कारण था कि मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी के सब चेले अन्त को ऋषि दयानन्द की पवित्र शरण में आए और आर्यसमाज के उत्साही समासद् बने। इसी प्रकार के सुशिक्षित युवक वीरों में से एक लेखराम था।

अलखधारी की पुस्तकों को पढ़ने से ही लेखराम को ऋषि दयानन्द के नाम और काम का पता लगा। तब इन्होंने अपने माने हुए अद्वैत मत की पड़ताल की और जब तक पूरी छान-बीन करके अपने आपको परमात्मा के सेवक, पुत्र, भक्त न समझ लिया तब तक दम न लिया। इन्हीं दिनों समाचार पत्रों में ऋषि दयानन्द के धर्म प्रचार के काम की धूम मची हुई थी। लेखराम ने पत्र-व्यवहार आरम्भ करके ऋषि प्रणीत ग्रन्थों को मंगाया और सम्वत् १९३७ के अन्तिम भाग में ही पेशावर में आर्य्य समाज स्थापित कर दिया।

आर्य्य समाज तो स्थापन हुआ किन्तु उसकी सीमा लेखराम से बाहर न थी। जिनको मृत्यु के समय धर्म्म की मूर्ति माना गया और जिनके नाम के साथ पण्डित शब्द आने आपको स्वयं सम्मानित समझता था, उन्हें उस समय "लेखू" कहकर पुकारा जाता था। लोकोक्ति प्रसिद्ध है—"माया तेरे तीन नाम। परसू, परसा, परसराम।" इसी प्रकार कहा जा सकता है कि आत्मसमर्पण करने वाले लेखराम भी लेखू से लेखराम और फिर "धर्म वीर पण्डित लेखराम" बन गए। लेखू महाशय उस समय पेशावर नगर में "माईरत्नो की धर्म्मशाला" के अन्दर रहते थे। उसी स्थान में आर्य्य समाज के साप्ताहिक

नहीं प्रत्युत दैनिक अधिवेशन होने लगे। न कोई नोटिस लगाया जाता और नहीं ढिंढोरा पिटवाया जाता; वैदिक धर्म का सिपाही लेखू अपने तीन चार मित्रों को समझाने बैठता। पांच में चार मित्रों को तो समझा लिया और वे "खुद खुदा" कहलाने से लज्जित होकर परमपिता की शरण में आ गए, किन्तु पांचवां कट्टर नवीन वेदान्ती था जिसने लेखू को भी अद्वैत का पहला पाठ पढ़ाया था। जब वह किसी प्रकार भी काबू न आया तो लेखू से "लेखराम" बने हुए मित्र ने कहा—"कमबख्त! तेरी समझ में कुछ नहीं आता तब भी हमारी खातिर से ही आर्य्य बन जा। मित्र मण्डल तो न टूटेगा।" यह युक्ति प्रबल थी, काट कर गई। पांचों ने मिलकर काम करना आरम्भ किया। कहते हैं कि "एक एक और दो ग्यारह" होते हैं। यहां तो—"पांच पंच मिल कीजे काज। हारे जीते न आवे लाज" वाला मामला हो गया था।

धर्म्म जिज्ञासु लेखराम ने आर्य समाज तो स्थापन कर लिया और नियम पूर्वक नित्य कर्मों का पालन भी आरम्भ कर दिया किन्तु दूसरों को समझाने में कभी-कभी स्वयं डांवा-डोल हो जाते। अन्य सब सिद्धान्तों का तो बड़ी प्रबल युक्तियों से मण्डन करते किन्तु जब अपने नवीन वेदान्ती मित्रों से बात-चीत होती तो कभी निरुत्तर हो जाते। फिर थे भी तो अभी तक सुन्नी आर्य। एक लोकोक्ति है कि मुसलमानी मत सब रास्ते साफ करता और तलवार के जोर से लोगों को महम्मदी बनाता जब अटक नदी के किनारे पहुंचा तब गुरु नानक ने कहा—"अब तो अटक।" गुरु महाराज के इस आदेशानुसार असली मुसलमानी मत अटक के उस पार ही रह गया; तब मुल्लाओं ने अपनी बाङ्ग देनी शुरू की जिसको सुनकर अटक

के इस पार वाले हिन्दू भी मुसलमान होने लगे। इसीलिए हिन्दुस्तान के मुसलमान सुन्नी कहलाते हैं।

उपरोक्त लोकोक्ति के अनुसार लेखराम जी अब तक सुन्नी आर्य ही थे। उन्होंने मन में ठान लिया कि आर्य समाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द से संशय निवृत्ति करने और उनसे आशीर्वाद लेने के लिए उनकी सेवा में अवश्य जाना चाहिये। ऐसा निश्चय दृढ़ करते ही साढ़े चार वर्षों की नौकरी के पश्चात् एक मास की पहली छुट्टी (५ मई सं १८८० ई० से) लेकर ११ मई को ऋषि दयानन्द के दर्शनार्थ अजमेर नगर की ओर चल दिए। लाहौर, अमृतसर, मेरठ आदि नगरों के प्रसिद्ध आर्य-समाजों में ठहरते हुए १६ मई की रात को अजमेर जा पहुंचे और १७ मई को सेठ फतेहमल जी की वाटिका में पहुंच कर ऋषि दयानन्द के पहिली और अन्तिम वार, दर्शन किये। इस समागम का हाल आर्य पथिक ने अपने शब्दों में इस प्रकार दिया है:—

स्वामी दयानन्द के दर्शन से यात्रा के सब कष्ट विस्मृत हो गए और उनके सत्योपदेशों से सर्व संशय निवृत्त हो गए। जयपुर में मुझसे एक बङ्गाली ने प्रश्न किया था कि आकाश भी व्यापक है और ब्रह्म भी व्यापक है; दो व्यापक किस प्रकार एक स्थान में इकट्ठे रह सकते हैं। मुझसे इसका कुछ उत्तर बन न आया। मैंने यही प्रश्न स्वामी जी से पूछा। उन्होंने एक पत्थर उठाकर कहा "इसमें अग्नि व्यापक है वा नहीं?" मैंने कहा कि व्यापक है फिर पूछा—"मट्टी?" मैंने कहा कि व्यापक है। फिर पूछा—"परमात्मा?" मैंने कहा कि वह भी व्यापक है। तब कहा—"देखो! कितने पदार्थ हैं, परन्तु सब इसमें व्यापक हैं। असल बात यह है कि जो (वस्तु) जिससे सूक्ष्म

होती है वही उसमें व्यापक हो सकती है। ब्रह्म यतः सबसे अति सूक्ष्म है अतः सर्वव्यापक है।" इससे मेरी शांति हो गई।

मुझे उन्होंने आज्ञा दी कि जो संशय मुझे हों उनको निवारण कर लूं। मैंने बहुत सोच समझ कर दश प्रश्न लिखे जिनमें से तीन मुझे याद हैं, शेष सब भूल गए—

प्रश्न—जीव ब्रह्म की भिन्नता में कोई वेद का प्रमाण बतलाइए।

उत्तर—यजुर्वेद का चालीसवां अध्याय सारा जीव ब्रह्म का भेद बतलाता है।

प्रश्न— अन्यमतों के मनुष्यों को शुद्ध करना चाहिए वा नहीं?

उत्तर— अवश्य शुद्ध करना चाहिए।

प्रश्न—विजुली क्या वस्तु है और कैसे उत्पन्न होती है?

उत्तर—विद्युत् सर्व स्थानों में है और रगड़ से उत्पन्न होती है। बादलों की विद्युत् भी बादलों और वायु की रगड़ से उत्पन्न होती है।

अन्त में मुझे आदेश दिया कि २५ वर्ष (की आयु) से पहिले विवाह न करना।

ऋषि दयानन्दजी के थोड़े ही सत्संग ने लेखराम के धार्मिक विचारों को दृढ़ कर दिया और इसीलिए उनके पश्चात् हम वैदिक धर्म पर उनका विश्वास चट्टान की तरह दृढ़ पाते हैं।

धर्म्म कार्यों में अधिक अनुराग और दासत्व से मुक्ति

अजमेर से लौटते ही पण्डित लेखराम का पहला कारनामा उनके सारे शेष जीवन के पुरुषार्थ का एक दृष्टान्त मात्र है। एक दिन आप अपने पुराने परिचित सन्त दामोदर-

दास वेदान्ती के पास गए। सन्त जी ने कहा कि सब ब्रह्म ही ब्रह्म हैं। लेखराम ने पूछा "महाराज? आप भी ब्रह्म हैं मैं भी ब्रह्म हूँ और यह पुस्तक भी ब्रह्म है?" उत्तर हां में मिलते ही पण्डित लेखराम ने पुस्तक (जिसमें उपनिषदों का गुटका था) उठाली और वेदान्ती जी के मांगने पर फिर उनको न लौटाई। वह पुस्तक सम्वत् १९५२ तक पेशावर आर्यसमाज के पुस्तकालय में ग्रन्थकर्ता ने स्वयं देखी थी। ऋषि दयानन्द के प्रत्यक्ष सत्संग ने हमारे चरित्रनायक के मन पर स्वतन्त्रता तथा धर्म-भक्ति का रंग अधिक गाढ़ा कर दिया था, इसलिए अजमेर से लौटकर उन्हें धर्मप्रचार की ही धुन लगी रहती थी। पेशावर आर्यसमाज की ओर से उर्दू का मासिक पत्र "धर्मोपदेश" नामी जारी कराया जिसके सम्पादन का भार भी स्वयं ही उठाया। इसके साथ ही जन-साधारण में निडर होकर मौखिक धर्मोपदेश आरम्भ कर दिए। एक दिन विज्ञापन दिया कि मद्यपान निवारणार्थ व्याख्यान देंगे। व्याख्यान अंजुमन के हाल में था जिस कारण जिले के डिपुटी कमिश्नर अन्य अंग्रेजों सहित पधारे। बहुत से सेनाधिकारी भी उपस्थित थे। लेखराम का व्याख्यान युक्ति-युक्त तथा प्रभावशाली हुआ। एक फ़ौजी कप्तान ने उसका समर्थन किया और बतलाया कि उसने भी अपनी सेना में मद्यपान को बन्द करा दिया है।

इस समय के पुलीस सुपरिन्टेन्डेन्ट को जब पता लगा कि उनका नक्शा नवीस सार्जेन्ट लेखराम बहस मुबाहसे में बहुत ताक है तो प्रायः अपने डिपुटी रीडर वजीरअली के साथ उनका मुबाहसा (शास्त्रार्थ) कराकर स्वयं आनन्द लूटा करते। मुझे बतलाया गया है कि यह साहेब बहादुर प्रायः लेखराम के कथन का ही समर्थन किया करते थे।

किन्तु "सब दिन जतन एक समान" अपनी धुन में मस्त लेखराम को उस गहरी नींद से जागना पड़ा क्योंकि नए पुलीस सुपरिन्टेन्डेन्ट के आने पर बहुत सी तबदीलियां हुईं। इसी चक्र में लेखराम को पेशावर शहर से थाना "सुआवी" में बदला गया। बाहर जाकर भी अपने प्रिय मासिक पत्र धर्मोपदेश के लिए यथाशक्ति लेख भेजते रहे और समाज का मासिक चन्दा १) सैंकड़ा के स्थान में बराबर ५) सैंकड़ा देते रहे। जाने को पेशावर से बाहर चले तो गए किन्तु धर्म-प्रचार की इच्छा रूपी प्रचण्ड अग्नि कहीं थोड़ा ही मन्द पड़ गई थी, वहां पर भी मुहम्मदियों से बहसमुबाहसा जारी रहा। एक दिन पुलिस इन्स्पेक्टर ने, जो थाने का मुलाहिजा करने आया था, लेखराम को मुबाहिसे में फंसा लिया। लेखराम भला धर्म के मामले में कब लिहाज करने वाले थे, उत्तर मुंह तोड़ दिये। उस समय तो इन्सपेक्टर साहब अपना सा मुंह लेकर चुप हो गये किन्तु दूसरे दिन ही "अदूल हुकमी" (आज्ञा भङ्ग) के अपराध में रिपोर्ट कर दी। तब १२ जून १८८३ को सदर से हुकुम आया कि "छः मास के लिए लेखराम का एक दर्जा तोड़ दिया जावे और वह थाना कालूखां में बदला जावे।"

सुआवी के थाने में रहते हुए जो उर्दू भारत-दण्ड-संग्रह की पुस्तक लेखराम के पास थी उसके पहले पृष्ठ पर एक लष्टम पष्टम सा चित्र खींच कर आपने उसके ऊपरले भाग में 'ओ३म्' लिखा था और उसके ऊपर एक झण्डे की शकल बनाई, अर्थात् उसी समय से यह दृढ़ निश्चय कर लिया था कि 'ओ३म्' का झण्डा किसी दिन सारे भूमण्डल पर फहरायगा और सर्वमतों का शिरोमणि बनेगा।

थाना सुआवी में होते हुए ही लेखराम के साथ महम्मदियों का द्वेष बहुत कुछ बढ़ चुका था, उसको अपने धर्म-कार्यों के लिए समय भी कम मिलने लगा। "सत्योपदेश" के जीवन का ही सारा निर्भर केवल अकेले लेखराम की लेखनी पर न था। प्रत्युत उसकी आर्थिक दशा को ठीक रखने का बोझ उठाने वाला भी कोई और न था। जब पेशावर आर्य समाज ने अधिक घाटा देख कर सत्योपदेश को बन्द करने की ठान ली तो एक मास के घाटे के लिये ५) लेखराम ने ही भेज दिये। इस पर भी जब मासिक पत्र की इतिश्री का ही निश्चय हुआ तो पण्डित लेखराम ने अपने चचा को लिखा—"जो निश्चय आपने तथा आर्य समाज (पेशावर) के सर्व समासदों ने "धर्मोपदेश" को बन्द करने के विषय में किया है, वह तो शिरोधार्य है परन्तु यह वाक्य कि हमारी समाज की उन्नति नजर नहीं आती, यह पाँच छः रुपये मासिक समाज की उन्नति में व्यय करना चाहिये, इत्यादि मुझे चिन्ता (में डालते हैं)······मजमून रिसाला धर्मोपदेश, जो मैंने भेजा था, लौटा दीजिये, ताकि उसको आर्य समाज मेरठ में छपवाया जावे, और (मेरे) मौजूदा पाँच रुपये में से ३) महम्मद मालिक मतबाशरीफी को दे दें और २) अपने हिसाब में जमा फरमावें।" ये शब्द स्वयं बोल रहे हैं, इन पर किसी टीका टिप्पणी की आवश्यकता नहीं।

फिर सिवाय इसके और क्या हो सकता था कि रिसाला सत्योपदेश को बन्द कर दिया जाय। लेखराम के इस पहले मानसिक बच्चे का अन्त्येष्टि संस्कार मार्च सन् १८८३ ई० को हो गया। थाना कालूखाँ में पहुंचने से पहले ही लेखराम के कट्टरपन की धूम महम्मदियों में मची हुई थी, किन्तु इस दुष्कीर्ति के होते हुए भी वह अन्य मतावलम्बियों को अपने

धर्म के सिद्धान्त समझाने के उद्देश्य से ऐसा प्यार करते थे कि पक्षपातियों से न भड़काए हुए सर्व साधारण मुसलमान उनके साथ प्रेम करने के लिये बाधित हो जाते। थाना कालूखां के विषय में मुझे केवल पेशावर की पुलिस आज्ञा पुस्तक से दो आज्ञाओं की नकल मिली है, जिनसे पता लगता है कि वहां के मुसलमान सब इन्सपेक्टर और सारजन्ट लेखराम का एक दर्जा, किसी "हजरत-शाह चौकीदार" के मुकद्दमे में गफलत (असावधानी) दिखाने के कारण तोड़ दिया गया था। ये दोनों आज्ञाएं ६ जून, सं० १८८४ ई० को निकलीं, किन्तु इनके निकलने से पहले ही लेखराम सारजेन्ट को दफ्तर पुलिस में तबदील कर दिया गया था और वहाँ से उसे साहब असिस्टेन्ट मजिस्ट्रेट की पेशी में लगाया गया। यह बात प्रसिद्ध थी कि अपराध तो थाना कालूखां के मुसलमान सब इन्सपेक्टर अकेले का था, किन्तु लेखराम अपनी निडर हाजिर जवाबी के कारण बिना अपराध के ही दण्डनीय समझा गया। मुसलमान पुलिस अफसरों ने समझा कि पेशावर में बुलवा कर वे लेखराम का मुंह बन्द कर देंगे, किन्तु इस अत्याचार ने दासत्व की बेड़ियों के काटने और लेखराम का मुंह स्वतन्त्रता से खुलवाने में प्रबल सहायता दी, और २४ जुलाई स० १८८४ ई० को सदा के लिए स्मरणीय दिन लेखराम ने पुलिस की नौकरी से त्याग पत्र दे दिया और लिख दिया कि दो महीने की कानूनी मियाद के पीछे उसे रोकने का किसी को भी अधिकार न होगा। दो मास के पश्चात् २४ सितम्बर १८८४ ई० को यह त्याग पत्र फिर पेश हुआ। लेखराम को त्याग पत्र लौटाने के लिये अंग्रेज हाकिमों ने भी बहुतेरा समझाया, किन्तु वहाँ तो लगन ही लग चुकी थी, हमारे वीर चरित्रनायक ने किसी की न सुनी और ३०

सितम्बर १८८४ ईसवी से त्याग पत्र की मञ्जूरी का हुक्म २४ सितम्बर को ही अपने हाथ से लिख और निकलसन साहब के उस पर हस्ताक्षर करा के मनुष्यों के दासत्व से सदा के लिये मुक्त हो गये। इस दासत्व की सांकल के कटते ही लेखराम सार्जेन्ट पण्डित लेखराम बन गये।

यह बात प्रसिद्ध है कि यवनों के संसर्ग से पंजाब प्रान्त में मांस भक्षण का प्रचार आर्य जाति में भी बहुत था और सीमा प्रान्त के जिलों में से पेशावर तो उस समय भी मांसाशियों का गढ़ समझा जाता था। यही कारण था कि पंजाब के पहले आर्य समाजियों ने अहिंसा धर्म के पालन की ओर अधिक रुचि नहीं दिखाई थी। मूर्तिपूजा और मृतक श्राद्ध के खंडन में जो बड़े अग्रणी थे वे सन्ध्या अग्निहोत्र के अभ्यास और मद्य मांसादि से वैराग को आवश्यक नहीं समझते थे, कारण यह था कि पहले पहल बहुधा नकली और असली आर्य बहुत थे। किन्तु पण्डित लेखराम असली आर्यों में एक ऊंचा पद रखते थे। मद्य तो पहले से ही उनके लिये घृणित वस्तु थी किन्तु मांस भक्षण को भी महापापों में से एक समझते थे। सन्ध्या में अनध्याय को वह सबसे बढ़कर पाप मानने लगे थे। मुझे यह पता नहीं लगा कि उन्हीं दिनों नित्य हवन का प्रारम्भ किया था वा नहीं, किन्तु उनके अन्य चरित्रों से यही अनुमान होता है कि वैदिक धर्म की शरण में आते हुए उन्होंने सच्चे धर्म की प्राप्ति को जीवन और मृत्यु का प्रश्न समझा था।

धर्मान्दोलन में अनन्य अनुराग

यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है- "होनहार बिरवान के चिकने चिकने पात।" पण्डित लेखराम पर यह लोकोक्ति सर्वाङ्ग में

चरितार्थ थी। जिस आर्य्य पथिक ने धर्म्म प्रचार के लिए यात्रा करते हुए दिन रात को एक कर देना था, जिस लेखवीर ने सत्यधर्म की रक्षा के लिए अपूर्व ग्रन्थ लिखने थे और जिस शास्त्रार्थ के धनी ने वैदिक धर्म के विरोधियों को स्थान-स्थान पर निरुत्तर करना था, उसको आर्य समाज में प्रवेश करते ही शास्त्रार्थ तथा लेख का अभ्यास हो चला था।

पेशावर आर्य समाज के भाइयों की कृपा से मुझे लेखराम की सभासदी के समय के सब रजिस्टर मिल गए हैं। एक ओर तो समाज का सारा आय व्यय का हिसाब लेखराम के हाथ का लिखा हुआ है, और दूसरी ओर आए गए पत्रों की प्रति लिपि लगभग उन्हीं के हाथ की है। आए हुए पत्रों की नकल तो किसी अन्य के हाथ की है, किन्तु जो पत्र भेजे गए उनका सारांश प्रायः पण्डित जी का अपना लिखा हुआ है। ८ फरवरी १८८२ ई० को आपने पादरी एम० वेरी साहेब से इन्जील के ईश्वरीय ज्ञान होने तथा मुक्ति के लिए ईसा पर ईमान लाने की जरूरत पर शास्त्रार्थ का घोषणा पत्र भेजा। इस का जो उत्तर पादरी साहेब की ओर से आया वह बड़ा गोल-मोल है। इस समय समाज के मन्त्री होते हुए भी पण्डित लेखराम अपने आपको "मैनेजर पेशावर आर्य समाज" लिखा करते थे और थे भी तो सर्व प्रकार के प्रबन्धकर्त्ता ये ही।

पेशावर शहर से जब पुलिस की नौकरी में बाहर बदल गए थे, तब भी मासिक चन्दा देते हुए आर्यसमाज पेशावर के सभासद् बराबर बने रहे। एक बार किसी काम के लिए पेशावर आए तो साप्ताहिक अधिवेशन में, जो एक तहसीलदार की धर्मशाला में हो रहा था, सम्मिलित हुए। साप्ताहिक अधिवेशन की समाप्ति पर अन्तरंग सभा के सभासद् बैठे रहे और

विचार यह होने लगा कि जिन तहसीलदार महाशय की धर्मशाला अधिवेशनों के लिए मिली है उनको ही समाज का प्रधान बनाया जावे। तहसीलदार साहब भी विराजमान थे। पण्डित लेखराम ने बिना संकोच के कहा—"यह मांस खाते और शराब पीते हैं, ऐसा आदमी प्रधान नहीं होना चाहिए।" अन्य सब सभासद् तहसीलदार साहब को प्रधान बनाने पर तुल गए। तब पण्डित लेखराम अप्रसन्न होकर उठ गए, क्योंकि ऐसे विचार को सुनना भी वह पाप समझते थे।

सं० १८८२ ई० में जब पं० लेखराम अभी पेशावर में ही थे ऋषि दयानन्द की ओर से उन्हें दो पत्र मिले। एक के साथ गोरक्षा विषयक प्रार्थना पत्र प्रजा के हस्ताक्षरों के लिए था और दूसरे में पंजाब में हिन्दी के प्रचार के लिए शिक्षा कमीशन को मेमोरियल (Memorial) भेजने की प्रेरणा थी। दोनों कार्य पण्डित लेखराम ने बड़े उत्साह से कराए।

अभी पण्डित लेखराम पेशावर से बाहर थानों में ही घूम रहे थे कि उनके पास कादियां के "मिर्जा गुलाम अहमद" की बनाई पुस्तक "बुराहीन अहमदिया" पहुंच गई, जिसमें मिर्जा जी ने पहले पहल पैगम्बरी का दावा किया था, और साथ ही यह पता लगा कि मिर्जा गुलाम अहमद के बड़े चेले हकीम नूरउद्दीन की सङ्गत से जम्मू में एक ठाकुरदास नामी हिन्दू महम्मदी मत स्वीकार करने को तैयार है। पंडित लेखराम तीन-चार बार छुट्टी ले ले कर उसे समझाने के लिए जम्मू गए और इनका पुरुषार्थ इतना फलदायक हुआ कि ठाकुरदास कादियानी का गुलाम बनने से बच गया।

इन्हीं दिनों पण्डित लेखराम ने मिर्जा की "बुराहीन" के चारों हिस्से पढ़ डाले और जब चौथे भाग में आर्य समाज और

आर्य सिद्धान्तों पर विषमय आक्रमण देखे तो तत्काल ही उस पुस्तक का उत्तर लिखना आरम्भ कर दिया। आर्य पथिक को जिस बात की धुन लगती उसके आरम्भ करने में एक पल की देर करना भी उन्हें दूभर हो जाता था। वहां नया कागज मंगाने को समय कहां था, आर्य समाज पेशावर के रजिस्टर पर ही उत्तर घसीटने लग गए।

जम्मू में पण्डित लेखराम पण्डित नारायणकौल के यहां ठहरे जो प्रसिद्ध पण्डित मनफूल के भाई थे। यह महाशय अरबी तथा फारसी के बड़े विद्वान् थे। इनसे पण्डित लेखराम को "बुराहीन अहमदिया" के खण्डन में बड़ी सहायता मिली।

धर्मान्दोलन तथा धार्मिक विषयों के विचार में तो लगन पहले से ही लग चुकी थी; ऋषि दयानन्द की, धर्म तथा देश के लिए, शोकजनक मृत्यु ने और भी अधीर कर दिया और सारे संसार को वैदिक धर्म के झण्डे के नीचे लाने का कर्तव्य भी लेखवीर ने अपना ही समझ कर धर्मवीर का पद प्राप्त करने की ओर पग उठाया। कोई आर्य जाति में से ईसाई वा मुसलमानी मतों की ओर झुके तो उसे बचाने का बीड़ा लेखराम उठाते थे; जन्म के ईसाई और मुसलमान को वैदिक धर्म की शरण में लाने का अपना कर्तव्य वह बतलाते थे; वैदिक धर्म पर कोई भी आक्षेप हो उसका उत्तर देना इनका कर्त्तव्य था और प्रत्येक प्रकार के नास्तिकत्व का खण्डन इनका ही धर्म था।

इन्हीं दिनों यह समाचार गरम था कि मुजफ्फर नगर के रईस, चौधरी घासीराम जी मुहम्मदी मत की ओर झुके हुए हैं। ऐसा भी अनुमान होता है कि शायद उस अवसर पर छुट्टी न मिलने के कारण ही पंडित लेखराम ने सरकारी नौकरी

से त्यागपत्र दे दिया हो। मेरे चचा उन दिनों मुज़फ्फ़रनगर में पुलिस इन्सपेक्टर थे। उनसे मुझे पता लगा था कि आर्य उपदेशकों ने महम्मदी मौलवियों को लाजबाव कर दिया था।

कुछ ही हो पण्डित लेखराम ने अपना त्यागपत्र स्वीकार होने तक कादियानी मिर्जा के जवाब में "तकजीव बुराहीन ए-अहमदिया का प्रथम भाग" तय्यार करके लिख लिया था।

दासत्व से मुक्त होते ही सबसे पहले आर्य समाज रावल-पिण्डी के वार्षिकोत्सव पर पहुंचे। उन दिनों बड़े वक्ता न थे कि बिना लिखे कोई विषय निभा सकें किन्तु फिर भी एक लेख बद्ध व्याख्यान उस उत्सव में पढ़ा। उसका शीर्षक था— "आर्य धर्म के आलमगीर होने के सबूत और उसके आइन्दा तरक्की के निशान मजबूत"। काफिया मिलाने का पहले से ही शौक था। यह व्याख्यान लाला गंगाराम धम ने मेरे पास रावलपिण्डी आर्य समाज के कार्यालय से निकाल कर भेजा था जो २१ तथा २८ आषाढ़, सम्वत् १९५४ के सद्धर्म-प्रचारक में छप चुका है। इस व्याख्यान में पण्डित लेखराम ने यह बड़ा उदार भाव प्रकट किया था कि:—

"स्वामी दयानन्द और बाबा नानक जी के ख्यालात वाहिद थे। मेरे ख्याल में वह (बाबा नानक जी) वेदोक्त धर्म को तरक्की देने वाले थे और हत्तलवसा यथा शक्ति) उन्होंने आर्य्य धर्म फैलाने में बहुत कोशिश की।" रावलपिण्डी से गुरुदासपुर पहुँच कर एक ओर तो मिर्जा साहेब को शास्त्रार्थ के लिए चैलेञ्ज भेजा और दूसरी ओर १ अक्टूबर १८८४ को विज्ञापन देकर बड़ी जन उपस्थिति में उनके आक्षेपों के उत्तर पढ़े गए। मिर्जा गुलाम अहमद ने तो आना ही क्या था; हां आर्य जगत् में जो खलबली मिर्जा के ग्रन्थ ने मचाई थी वह

दूर हो गई। पण्डित लेखराम की यह पहली पुस्तक ऐसी जबरदस्त समझी गई कि बहुत लोगों ने इसकी हस्तलिखित प्रतियां बड़ा व्यय करके, प्राप्त कीं।

गुरुदासपुर में व्याख्यान देने के पश्चात् पण्डित लेखराम लाहौर लौट गए, और वहां कुछ दिनों, उपदेश का कार्य भी जारी रखते हुए, संस्कृत व्याकरण का अभ्यास करते रहे। पण्डित लेखराम इस समय दृढ़ता से संस्कृत साहित्य विशेषतः वैदिक साहित्य का स्वाध्याय नियम पूर्वक गुरुमुख से करना चाहते थे, किन्तु यह काम प्रथम आश्रम की शान्त अवस्था में ही हो सकता है। पण्डित लेखराम के अन्दर संसार में अविद्या का राज्य देखकर, बड़ी भारी हल-चल मच चुकी थी। ऋषि दयानन्द की अकाल मृत्यु ने उनका उत्तर दायित्व बहुत बढ़ा दिया था, इसलिए जब उस कादियानी मिर्जा की ओर से, जिसके "झूठे दावों की तरदीद" यह ग्रन्थ रूप में कर चुके थे, एक विज्ञापन देखा, जिसमें उसने महम्मदी मत की पुष्टि में चमत्कार (Miracle) दिखाने की प्रतिज्ञा की थी, तो इनसे न रहा गया।

सिंह की गुहा पर सीधा आक्रमण।

मिर्जा जी ने अपने इश्तहार में सिंह की तरह चौमुखी लड़ाई का घोषणा पत्र दिया था। उन्होंने सर्व मतस्थ पुरुषों को इसलाम की दावत दी थी और अपने आपको "खुदा का पैगम्बर" सिद्ध करने के लिए प्रतिज्ञा की थी कि यदि कादियां में एक वर्ष तक रहकर वह कोई दैवी चमत्कार (आसमानी निशान) न दिखा सके तो इस प्रकार एक वर्ष रहे हुए मनुष्य को २००) मासिक के हिसाब से २४००)

देंगे। पण्डित लेखराम ने जब यह इश्तिहार पढ़ा उस समय वे अमृतसर में थे। विज्ञापन पढ़ते ही उन्होंने ३ अप्रैल, १८८५ ई० को मिर्जा जी के नाम पत्र लिखा जिसमें उनकी शर्तों को स्वीकार करके प्रतिज्ञा की कि जिस समय वह २४००) सरकारी कोष में दाखिल करने की सूचना देंगे उस समय स्वयं कादियां में पहुंच जायेंगे। इसके उत्तर में मिर्जा ने एक नई अड़चन लगाई कि वह साधारण पुरुषों से वाद विवाद नहीं करना चाहता, उसके साथ कोई अपनी सम्प्रदाय का प्रामाणिक और प्रसिद्ध आदमी ही जुटे तो वह तय्यार होगा। यह पत्र पण्डित लेखराम के पास लाहौर में ६ अप्रैल १८८५ को पहुंचा और उसी दिन उन्होंने इसका उत्तर दे दिया जिसमें पहले मिर्जा के नए अड़चन का खण्डन किया और लिखा कि उन्हें धन का लालच इस असली मुबाहसे के लिए नहीं खींच रहा प्रत्युत सत्यासत्य के निर्णय के लिए वह तय्यार होकर मैदान में आना चाहते हैं। इसके पश्चात् मिर्जा जी ने नई बाधा खड़ी की। उन्होंने पण्डित लेखराम से भी २४००) जमा कराने की नई याचना की। इसी प्रकार प्रत्येक नए पत्र में मिर्जा जी ने नए नए अडंगे लगाए, जिनके मुंहतोड़ परन्तु सभ्यतामय उत्तर पण्डित लेखराम ने दिए। यह पत्र व्यवहार ५ अगस्त १८८५ तक बराबर जारी रहा किन्तु परिणाम कुछ भी न निकला।

इसी अन्तर में पंडित लेखराम ने अमृतसर और लाहौर में प्रचार करने के पश्चात् १८ अप्रैल को पेशावर को प्रस्थान किया । आर्य समाज पेशावर के पहले भी प्रधान थे। २५, २६ अप्रैल को अपने प्रिय आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए और उस अवसर पर व्याख्यान देने के अति-

रिक्त २६ अप्रेल तक धर्म प्रचार किया। आगामी वर्ष के चुनाव में पंडित लेखराम ही प्रधान नियत हुए और फिर पंजाब की ओर लौट आए। इस ओर भी बराबर धर्म-प्रचार करते हुए २० जुलाई से ५ अगस्त तक अमृतसर में निवास किया। इस स्थान में उन्हें मिर्जा गुलाम अहमद के उत्तरों की प्रतीक्षा रही।

जब मिर्जा जी की ओर से कोई उत्तर न मिला और तीन मास व्यतीत हो गए (जिस अन्तर में पं० लेखराम धर्म-प्रचार का कार्य करते और साथ-साथ पुस्तकें लिखने का काम भी जारी रखते गये) तो आर्य मुसाफिर ने मिर्जा जी को स्मरणार्थ एक पोस्टकार्ड भेजा जिसके उत्तर में मिर्जा जी ने लिखा— "कादियां कोई दूर तो नहीं है। आन करके मुलाकात कर जाओ। उम्मीद कि यहां पर बाहमी (परस्पर) मिलने से शरायत तै हो जावेंगी।" धर्मवीर आर्य्य मुसाफिर को तो केवल हाथ अटकाने को स्थान चाहिए था, वह उसी समय मिर्जा जी की परीक्षा के लिए तय्यार हो गए और जिस चालबाज बाघ के पास जाने से बड़े बड़े मतवादी डरते थे निःशङ्क उसके साथ उसके ही मकान में "दस्त पंजा" लेने के लिए जा पहुंचे।

पंडित लेखराम जी पूरे दो मास कादियां में रहे। एक ओर तो उन्होंने मिर्जा जी के "इलहामी कोठे" पर जा-जाकर उनका नाक में दम कर दिया। तीन बार कई भद्र पुरुषों को साथ लेकर गए और तीनों बार मिर्जा जी को निरुत्तर करके लौटे। और दूसरी ओर खुले व्याख्यानों में न केवल मिर्जा जी के "बुराहीन" की ही कलई खोली, बल्कि उनकी इलहामी चालबाजियों का भी भण्डा फोड़ दिया, जिससे मिर्जा जी की आमदनी में बड़ी बाधा पड़ गई इन्हीं दिनों कादियां में आर्य समाज भी स्थापित हो गया जिसमें मिर्जा जी के फांसे हुए

बहुत से भोले हिन्दू भी सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य की शरण में आ गए।

मिर्जा गुलाम अहमद का "नाक में दम" कर और कादियां में एक "जबरदस्त" आर्य समाज स्थापन करके पंडित लेखराम फिर अन्य स्थानों में वैदिक धर्म का प्रचार करने चले गए। बटाला आदि नगरों में धर्मोपदेश देकर ध्यान से आत्माओं को शीतल सद्धर्म रूपी जल पिलाते हुए आर्य्य पथिक अम्बाले पहुंच कर अपना कर्त्तव्य पालन कर रहे थे जब उन्होंने सुना कि क़ादियां के "विष्णुदास" नामी हिन्दू को बुलाकर मिर्जा जी ने कहा है कि यदि वह एक साल के अन्दर मुसलमान न हो जायगा तो उनके "इलहाम के मुताबिक" वह मर जायगा। २ दिसम्बर, १८८५ को विष्णुदास को मिर्जा जी ने यह धमकी दी और तार पहुंचते ही ४ दिसम्बर को पंडित लेखराम बिजली की तरह कादियां में आ चमके। उसी समय विष्णु-दास को बुलाकर समझाया और खुले व्याख्यान में मिर्जा जी की फिर से वह कलई खोली गई, कि भूला भटका भाई सच-मुच व्यापक विष्णु भगवान् का दास बनकर आर्य समाज का सभासद् बन गया और उसी दिन से मिर्जा जी की कुटिल नीतियों का खण्डन करने लगा।

आर्य पथिक के क्रियात्मक आर्य मुसाफ़िर बनने तक का वृत्तान्त

सं० १८८६ ई० के आरम्भ में पण्डित लेखराम की योग्यता की आर्य जगत् में धूम मच गई थी। "तकजीब बुराहीन अहम-दिया" का प्रथम भाग ठीक प्रबन्ध न होने से अभी छप नहीं सका था परन्तु उसकी नकलें होकर दूर-दूर पहुंच चुकी थी।

महम्मदियों के मुकाबिले पर आर्यसमाजियों ने उस पुस्तक की युक्तियों से काम लेना आरम्भ कर दिया था। जहां कहीं मुसलमानों से मुबाहिसे की छेड़-छाड़ होती वा उनका कुछ भी जोर होता वहीं से पण्डित लेखराम को निमन्त्रण पहुँच जाता।

इस ईसवी सन् के मार्च मास में मिर्जा गुलाम अहमद होशियारपुर में गए। वहां आर्य समाज के प्रसिद्ध सभासद् मास्टर मुरलीधर जी गवर्नमेंट स्कूल में ड्राइङ्ग मास्टर (आलेख्याध्यापक) थे। मास्टर जी उन आर्य्यों में से थे जो वेद विरुद्ध मतों की पोल खोलने के लिए हर समय तय्यार रहते हैं। मिर्जा जी की डोङ्गों को सुनकर मास्टर जी से रहा न गया और ११ मार्च, १८८६ की रात को उन्होंने मिर्जा जी के डेरे पर पहुंच कर महम्मद साहेब के चांद के टुकड़े करने वाले चमत्कार (मोजजे) पर लेख बद्ध आक्षेप किए। अनुमान ५ वा ६ घण्टों तक प्रश्नोत्तर होते रहे। फिर १४ मार्च १८८६ के दिन को मिर्जा जी ने यह प्रतिज्ञा स्थापन की रूप (जीवात्मा) अनादि नहीं; पैदा की हुई (हादिस) है। इस प्रश्न के सुनाने और बातें बनाने में ही मिर्जा जी ने दो अढ़ाई घण्टे समाप्त कर दिए और फिर पांच ६ घण्टों तक प्रश्नोत्तर होते रहे। मिर्जा जी को तो इस समय रुपये बटोरने की सूझ रही थी और गम्भीर विषय की पुस्तकों की अपेक्षा बटेर बाजो वाली पुस्तकें अधिक बिकती हैं, इसलिए इस मुबाहिसे पर आने का ढग का निमक मिर्च मसाला चढ़ा कर मिर्जा जी ने एक २६० पृष्ठों की पुस्तक "सुरमा चश्म आरिया" (अर्थात् आर्यों की आंखों के खोलने के लिए सुरमा) शीर्षक देकर छपवादी।

पण्डित लेखराम के दिल पर चोट तो इस पुस्तक के छपने

से बहुत लगी परन्तु अभी पहली तैयार की हुई पुस्तक ही नहीं छपी थी, इसलिए उसकी छपाई में लगकर इस बात की भी प्रतीक्षा करते रहे कि मास्टर मुरलीधर जी ही उस पुस्तक का उत्तर छपवावें। किन्तु जब जुलाई सन् १८८७ को "तकजीब बुराहीन अहमदिया" का प्रथम भाग छपकर हाथों हाथ बिक गया और आर्य पथिक को पता लगा कि मास्टर मुरलीधर जी को सरकारी नौकरी के कारण उत्तर लिख कर छपवाने का अवकाश नहीं है तो उन्होंने स्वयं ही मिर्जा के दूसरे आक्रमण का उत्तर भी तैयार किया, और उसका नाम रक्खा "नुसखाखब्त अहमदिया।" इस नामकरण का हेतु स्वयं आर्य मुसाफिर ने इस प्रकार दिया है—"असल में यह मिर्जा" के एतराज माकूलियत से कोसों दूर हैं और साथ ही वेजा शेखी और लगवोयत (फूट) से तमाम किताब भरपूर है जो रास्ती नहीं बल्कि इलहासीखब्त (पागलपन) मालूम होता है, पस जरूर हुआ कि हम वैदिक हिकमत से उनके खब्त का इलाज करें, ताकि खुदा सेहत दे; बिना बरां इस रिसाले का नाम "नुसखा खब्त अहमदिया" रक्खा गया।"

सं० १८८८ के प्रथम भाग में विविध स्थानों में प्रचार करके पण्डित लेखराम फिर अप्रैल के अन्तिम सप्ताह में पेशावर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव पर पहुंचे और अपने व्याख्यानों से अपने प्रथम स्थापन किये हुए आर्य समाज को लाभ पहुंचाया। फिर स्थान स्थान पर व्याख्यान देने के साथ साथ ही पादरी खड़कसिंह के छः व्याख्यानों के उत्तर लिखकर भी छपवाये और बहुत सी छोटी छोटी पुस्तकें अवैदिक सिद्धान्तों के खण्डन में निकालीं।

पण्डित लेखराम के इस वर्ष के काम के विषय में १६

अक्टूबर १८८६ की आर्य पत्रिका में एक महाशय ने इस प्रकार लिखा था: –

"लेखराम आर्य समाज लाहौर का एक कट्टर सभासद् है। इसने अपना जीवन समाज के लिये बलिदान कर दिया है। यह अरबी और फारसी का बड़ा विद्वान् तथा वेत्ता है। अमृतसर आर्य समाज के गत वार्षिकोत्सव में इसने विरोधी मतों की समीक्षा पर एक उत्तम व्याख्यान दिया। इसके प्रयत्न से कहूटा के लोगों ने आर्य समाज स्थापित कर दी है। इसने सियानी, पिण्डदादनखां, भेरा आदि में अत्युत्तम व्याख्यान दिये। मजीठा में लाला गण्डामल असिस्टेन्ट इन्जीनियर को आर्य समाज की सचाइयों पर विश्वास दिलाया और अब कश्मीर में धार्मिक शास्त्रार्थ के लिये जा रहा है। "ऊपर के उद्धृत लेख से एक तो यह पता लगता है कि अपने निवास स्थान कहूटे में भी आर्य समाज की स्थापना के यही साधन बने थे। और दूसरे यह ज्ञात होता है कि इनके अर्थ त्याग का सम्मान करना आर्य जाति ने आरम्भ कर दिया था। लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि—"घर के जोगी जोगिना, आन गांव के सिद्ध।" परन्तु ज्ञात होता है कि लेखराम उन थोड़े से आदमियों में से थे जिनका अपने ग्राम में भी मान होता था।

सं० १९८७ के आरम्भ में पण्डित लेखराम को "आर्य गजट फीरोजपुर" का सम्पादक बनाया गया। उस समय पंजाब के आर्य समाजों के हाथ में अंग्रेजी के "आर्यपत्रिका" के अतिरिक्त अपने विचार तत्काल सर्व साधारण तक पहुंचाने का एकमात्र साधन 'आर्य गजट' नामी उर्दू का साप्ताहिक ही था। पण्डित लेखराम के प्रबल हाथों में आकर यह एक दम से चमक उठा। अनुमान दो वर्षों तक पण्डित लेखराम इस समा-

चार पत्र का सम्पादन करते रहे। उन दिनों के लेख पन्थाइयों के दिलों को हिला देने वाले निकला करते थे।

यद्यपि सम्पादकी बोझ उठाए हुए भी लेखराम जी आर्य समाजों के जलसों पर जाते रहे और धर्म प्रचार करते रहे किन्तु एक स्थान में टिक जाने से प्रमाणों को ढूंढ कर हवाले देने और अपनी पुस्तकों को छपवाने की उनको बड़ी सुगमता मिल गई। इन्हीं दिनों "तक जीवबुराहीन अहमदिया" का प्रथम भाग छपा और "नुसखा खब्त अहमदिया" भी तैयार हो गया। इसी अन्तर में दस बारह अन्य छोटी पुस्तकें तैयार हुई और कुछ छप भी गई; और इन्हीं दिनों अन्य बहुत सी बड़ी पुस्तकों के लिए मसाला इकट्ठा होता रहा।

ऋषि जीवन का अन्वेषण और धर्म प्रचार का विस्तार

अब तक यद्यपि नाम "आर्य मुसाफिर" था परन्तु यात्रा की परिधि संकुचित सी ही थी। पंजाब से बाहर आर्य पथिक ने पाँव नहीं रक्खा। तब यात्रा की परिधि में विस्तार के सामान पैदा होने लगे।

ऋषि दयानन्द का अन्त्येष्टि संस्कार हुए साढ़े चार वर्ष व्यतीत हो चुके थे। आर्य विभिन्न जनता की ओर से भी ऋषि के जीवन चरित्र की मांग पर मांग आ रही थी। टका सीधा करने वालों ने साधारण लेख छाप कर ऋषि के जीवन को सन्दिग्ध बनाना भी आरम्भ कर दिया था। सांसारिक विभूतियों पर लात मारने वाले योगी को सिद्धियों का साधक बनाना और मनुष्य पूजा की जड़ पर कुल्हाड़ी रखने वाले

ईश्वर भक्त को पूज्य अवतार बतलाना आरम्भ हो गया था, और आर्य समाजियों के कानों पर जूं भी नहीं रेंगती थी। ऐसे समय में मुलतान आर्य समाज ने अपने १७ अप्रैल, सन् १८८८ के अधिवेशन में सम्मति दी कि पण्डित लेखराम को स्वामी दयानन्द के जीवन सम्बन्धी वृत्तान्त इकट्ठा करने के लिए नियत किया जाय। मुलतान आर्य समाज का यह प्रस्ताव आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के ७ जुलाई सन् १८८८ के अधिवेशन में पेश होकर स्वीकार हुआ। तब पण्डित लेखराम जी से इसके विषय में पत्र व्यवहार शुरू हुआ और नवम्बर १८८८ में "आर्य गजट" के सम्पादन को छोड़ कर पं० लेखराम सचमुच आर्य मुसाफिर बन गये।

इस समय तक यद्यपि पण्डित लेखराम का नाम मैं सुन चुका था और अमृतसर के व्याख्यान का भी आनन्द ले चुका था, परन्तु अधिक परिचय मेरा आर्य पथिक के साथ नहीं हुआ था। नवम्बर के मध्य में पण्डित लेखराम ऋषि जीवन सम्बन्धी घटनाओं के वृत्तान्त जमा करने निकले और लाहौर में कार्य आरम्भ किया। इस वर्ष के लाहौर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में पण्डित लेखराम ने २८ नवम्बर को, धर्म चर्चा के समय, शङ्का समाधान में बड़ा प्रसिद्ध भाग लिया, जिसके कारण उपदेशकों में उनका पद ऊंचा समझा जाने लगा। उसके पश्चात् १२ दिसम्बर की शाम को रेल से पण्डित लेखराम जी जालन्धर नगर में पधारे। १३ को प्रातःकाल मेरे साथ पण्डित जी का वार्त्तालाप होता रहा, जिसमें हम दोनों एक दूसरे के अधिक समीप हुए। उसी सायंकाल पंडित जी का 'वेद ईश्वरीय ज्ञान" विषय पर, आर्य मन्दिर जालन्धर शहर में व्याख्यान हुआ। मेरी "दैनिक वृत्तान्त पञ्जिका" में लिखा है, फिर

पण्डित लेखराम का व्याख्यान सुनने गया। जन संख्या ५०० थी जिसमें सुशिक्षित सभ्य अधिक सम्मिलित थे। पण्डित जी की स्मरण शक्ति आश्चर्यमय है।

जालन्धर नगर से चलकर शायद मार्ग में एक दो स्थानों पर ठहरते हुए पण्डित लेखराम सीधे मथुरा पहुंचे। वहां सारा दिसम्बर मास वह भी स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी के शिष्यगण पण्डित युगलकिशोर, पण्डित दामोदर चौबे, पण्डित हरिकृष्णादि से ऋषि दयानन्द और उनके गुरु सम्बन्धी वृत्तान्त पूछते और लिखते रहे।

सन् १८८६ के प्रथम भाग में पण्डित लेखराम जी बराबर संयुक्त प्रान्त में ही काम करते रहे। जहां ऋषि जीवन सम्बन्धी अन्वेषण के लिये पहुंचते वहां व्याख्यान भी अवश्य देते, और यह व्याख्यान वेदमत मण्डन तथा महम्मदी मत खण्डन में ही होते। मथुरादि से ऋषि जीवन का मसाला इकट्ठा करते हुए आर्य पथिक अजमेर पहुंचे। उस समय अजमेर नगर में बड़ा भारी आत्मिक भौंचाल आया हुआ था। आर्य समाज की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति देख कर पौराणिकों, ईसाइयों, मुसलमानों और जीव रक्षा का दम भरने वाले जैनियों तक ने विरोध का झण्डा खड़ा कर दिया था। इसका विशेष कारण यह भी था कि उन्हीं दिनों पण्डित लेखराम की "तकजीव" और "नुसखा खब्त" पढ़कर अजमेर का एक अब्दुल रहमान नामी व्यक्ति महम्मदी मत को तिलाञ्जलि देकर वैदिक धर्म की शरण में आया था। आर्यसमाज की ओर से इसे सोमदत्त का सौम्य नाम दे दिया गया था। इससे मुसलमान बहुत ही दुखित थे और इन्होंने ही पौराणिक मण्डल को उत्तेजना देकर पहले उनका उत्सव रचवाया। आर्य वेचारे छेड़ छाड़ से

किनारा किये बैठे थे कि पौराणिकों के दूत उनके घरों में पहुंच पहुंच कर ललकारने लगे। वृद्धों ने तो इसकी कुछ परवाह न की किन्तु १० वा १२ युवकों से न सहन हो सका और वे प्रश्नोत्तर के लिए पौराणिकों के निमन्त्रणानुसार पहुंच ही गये। जब प्रश्नोत्तर का समय आया और एक आर्य युवक ने पहला ही प्रश्न किया तो पौराणिक दल घबरा गया और कुछ बदमाशों ने शोर मचा कर, कि आर्यों ने एक मूर्ति को खण्डित कर दिया है, आर्यों पर लात, घूंसा और लाठी से आक्रमण कर दिया। इस समय सोमदत्त ने बड़ी बहादुरी दिखाई और पटे के हाथ से भीड़ को हटाता हुआ आर्य युवकों को बचा लाया।

जब इधर कुछ पेश न गई तो मुसलमानों की बारी आई। उन्होंने न केवल आर्य समाज के विरुद्ध खुले व्याख्यानों में ही आक्रमण शुरु किये बल्कि सहस्रों ने इकट्ठे होकर यह धमकी दी कि यदि कोई आर्य बोला तो जान से मारा जायगा। "रहनुमा" नामी एक मासिक पत्र भी मुसलमानों ने निकाला था।

यह समय था जब पण्डित लेखराम अजमेर नगर में पधारे। पण्डित लेखराम के पहुंचने पर आर्य पुरुषों को अपनी चिन्ता तो भूल गई, उल्टी इनकी रक्षा की चिन्ता जाग उठी। विचार किया गया कि पण्डित जी की रक्षा के लिए चार पहरे वाले उनके पास रहें। जब धर्मवीर ने इस घुसपुस को सुना तो झिड़क कर कहा— "मुझे कोई जरूरत नहीं" तुम लोग बड़े डरपोक हो। कोई क्या कर सकता है?" दूसरे दिन ही मुसलमानों की ओर से आदमी आने लगे जिनसे पंडितजी बराबर बातचीत करते रहे। व्याख्यानों की धूम मच गई। एक मौलवी ने पंडित जी से हिन्दी पढ़ने की इच्छा प्रकट की। आर्य

समाजियों के गुप्त रीति से मना करने पर उनको झिड़क दिया और मौलवी को पढ़ाने लग गये। अन्त को वहां के आर्यों से एक नया मासिक "वैदिक विजय पत्र" निकलवा कर उसकी सहायता अपने लेखों से करते रहे। जो "जिहाद" नामी प्रसिद्ध पुस्तक पंडित लेखराम की मिलती है वह पहले इसी "वैदिक विजय पत्र" में क्रमशः निकली थी।

इन्हीं दिनों अजमेर से बाहर भी राजपूताने के कुछ स्थानों में ऋषि जीवन सम्बन्धी अन्वेषण करते हुए नसीराबाद छावनी में पहुँचे थे। वहां महम्मदियों से शास्त्रार्थ छिड़ गया। शहर कोतवाल शराबी कायस्थ था जिसने शास्त्रार्थ को मध्य में ही बन्द कर दिया। उसी रात शराबी कोतवाल को लकवा मार गया और दूसरे दिन वह मर गया। सर्वसाधारण में प्रसिद्ध हो गया कि उस दुष्ट को पंडित जी का शास्त्रार्थ बन्द करने का फल मिला। अन्य उपदेशक शायद सर्व साधारण के इस मिथ्या विश्वास से अनुचित लाभ उठाते किन्तु आर्य पथिक ने लोगों के इस भ्रम को दूर करने का बहुत ही प्रयत्न किया।

इसके पश्चात् पता लगता है कि पंडित जी छुट्टी लेकर अपने गृह पर आए। थोड़े दिनों ही घर पर ठहर कर भादों के आरम्भ में ही फिर अपने काम पर चले गये। २४ अगस्त के सद्धर्म-प्रचारक में छपा था—"पंडित लेखराम जी ने सवानह उमरी (जीवन चरित्र) का काम फिर शुरु कर दिया है। चन्द रोज हुए वह मेरठ की तरफ रवाना हुए। अब पहले मुमालिक मगरबी व शिमाली (पश्चिमोत्तर देश) में दौरा लगायेंगे।"

मालूम होता है कि मेरठ में आर्य पथिक बहुत दिनों तक ठहरे, क्योंकि "किनवेद वेवगान" नामी पुस्तक मेरठ के रामचन्द्र वैश्य से छपवा कर माघ १९४३ के आरम्भ में ही सद्धर्म-प्रचारक

के कार्यालय में पहुंच गई थी। उस लघु पुस्तक की समालोचना मेरी लिखी हुई १ फरवरी, १८६० के सद्धर्म प्रचारक में छपी है। इस पुस्तक में शास्त्रीय प्रमाणों से भी विधवा विवाह का ही समर्थन किया गया था। इसी लिये मुझे पहले पहल उस समय यह सन्देह हुआ था कि आर्य पथिक नियोग को आपत् काल का धर्म कदाचित् नहीं मानते हैं। समालोचना करते हुए मैंने लिखा था—"तर्जेतहरीर से वाजह होता है कि पण्डित साहेब नियोग को वेदानुकूल नहीं मानते, बल्कि पुनर्विवाह, हर बेवा का जाइज समझते हैं। हमारी राय में बेहतर हो अगर पण्डित साहेब इस बहस को छेड़ें ताकि इस अमर मुतनाजिया का कुछ फैसला हो और आर्य समाज एक खास नियम का पाबन्द हो जावे।" इस विषय को इसी स्थान में समाप्त करने के लिए इतना लिखने की आवश्यकता है कि सम्वत् १६५० वि० तक पण्डित लेखराम नियोग के विषय में कुछ सन्दिग्ध सी सम्मति रखते थे और प्रायः प्रसिद्ध आर्य समाजियों के साथ इस विषय में बातचीत करते रहते थे। जब सम्वत् १६५१ में मेरे साथ अधिक परिचय हुआ और खुली बातचीत होने लगी उस समय मेरे साथ विचार करने पर ही उन्होंने इस विषय में अपनी सम्मति बदल ली थी और इसी लिये उन्होंने पादरी टी० विलियम्स और पंडित शिवनारायण अग्निहोत्री (वर्तमान देव समाजी गुरु) की शङ्काओं का समाधान करने के लिए, "मसला नियोग" नामी ट्रैक्ट लिखा जो "कुलियात आर्य मुसाफिर" के २७६ पृष्ठ से आरम्भ होता है। मुझे भली प्रकार विदित है कि अपनी मृत्यु से एक वर्ष पहले वह द्विजों के लिए नियोग का ही विधान ठीक समझते थे, परन्तु शूद्रों के लिये पुनर्विवाह को ही शास्त्र सम्मत मानते थे। मेरठ से चल कर

आर्य पथिक कोल (अलीगढ़) में पहुंचे। उपनगर बरौठा में उन्हीं दिनों आर्य समाज स्थापित हुआ था, वहां १६ जनवरी १८६० को व्याख्यान दिया जिसमें प्रायः राजपूत अधिक सम्मिलित हुए और आर्य समाज को २० नये सभासद् मिले। फिर २१ और २२ जनवरी को खास अलीगढ़ में दो व्याख्यान देकर आगे चल दिये।

इसके पश्चात् आर्य पथिक संयुक्त प्रान्त और पंजाब के नगरों में सद्धर्म का प्रचार करते हुए ऋषि दयानन्द के जीवन सम्बन्धी घटनाएं लिखते रहे, और भ्रमण करते हुए बीमार होकर अगस्त सं० १८६१ के मध्य भाग में जालन्धर पहुंचे। यहां पहुंच कर उनको ज्वर बड़े जोर से चढ़ा। लाला देवराज के शान्ति सरोवर पर एकान्त में उनका डेरा कराया गया।

एक दिन कचहरी से ३ बजे ही लौट कर मैं पंडित लेखराम जी को देखने चला गया। पण्डित जी चारपाई पर बैठे हांप रहे थे और आंखों से ज्वर १०५ दर्जे से बढ़ा हुआ मालूम होता था। मैंने नमस्ते की, उत्तर कुछ न मिला। मैंने पीठ के पीछे हाथ डाल कर लेटाना चाहा, मेरी बाँह जोर से झटक दी और क्रोध में भरे हुए बोले—"बस साहेब! मैं यहां नहीं ठहरूंगा। यह आर्य गृह नहीं है।" मैंने पूछा "पण्डित जी क्या हुआ?" क्रोध से रुक रुक कर बोले—"पहले लाला देवराज को बुलाओ। मैं पीठ पीछे बात करना पाप समझता हूँ" लाला देवराज जी के लिए आदमी दौड़ाया गया। वह शीघ्र ही पहुंच गये। धर्म वीर के होंठ फड़कने लगे और बोले—"आप काहे के आर्य हो। इस तरह "ओ३म्" भगवान् की हतक करते हो।" इतने में मैंने वहां नियत किये हुए भृत्य को अलग ले जाकर पूछा तो पता लगा कि मामला क्या है। पण्डित लेखराम ज्वर

से पीड़ित चारपाई पर पड़े "ओ३म्" "ओ३म्" बोल रहे थे कि एक जन्म के ब्राह्मण का लड़का वहाँ पहुंचा। चारपाई के सामने कुछ दूर गमले पड़े थे। तीन चार गमलों के ऊपर "ओ३म्" शब्द लिखा हुआ था। ब्राह्मण के लड़के ने जूता उतार कर कुछ गाली बक, गमले पर लिखे "ओ३म्" पर जूते लगाने शुरु किये, पण्डित जी से सहन न हुआ, दुष्ट की ओर लपके। लड़का भागा, पीछे स्वयं भी भागे। भला नटखट लड़के को ज्वर से पीड़ित लेखराम कैसे पकड़ सकते। जब वह आंखों से ओझल हो गया, तो हांपते हुए लौटे और चारपाई पर बैठ गये।

मैंने लौट कर पण्डित जी को शान्त करना चाहा और कहा—"पण्डित जी, भला देवराज जी का क्या अपराध है। उस शैतान को क्या इन्होंने बुलाया था?" उत्तर मिला - "क्यों नहीं गमले को ऊंची जगह पर रक्खा जहां लड़के का हाथ न पहुंच सकता। ईश्वर जानता है मैं यहां नहीं ठहरूंगा।"

देवराज जी के नम्र उत्तर पर और भी बिगड़ने लगे। तब मैंने उनको भेजकर पंडित जी को लेटा दिया और मुट्ठी चापी करके सुलाया। यह घटना जहां आर्य्य पथिक की निर्बलता को प्रकट करती है, वहां साथ ही यह भी जतलाती है कि अपने मन्त्रों के लिए उनके हृदय में कैसी भक्ति थी।

दो सप्ताह तक पंडित लेखराम ज्वर से पीड़ित रहे। ज्वर उतरते ही निर्बलता को सर्वथा भुला कर उन्होंने २६ अगस्त १८७० के दिन पहला व्याख्यान दिया। फिर ३१ अगस्त को दूसरा व्याख्यान सद्धर्म्म विषय पर स्थानीय आर्य्य समाज के साप्ताहिक अधिवेशन में दिया। उसी समय नकोदर से समाचार आया कि वहां का गिरदावर कानूनगो, जो कुछ काल

से महम्मदी हो गया था, अपने संशय निवृत्त करना चाहता है। दूसरे दिन ही पंडित जी निर्बलता की परवाह न करते हुए इक्के की सवारी से, बहुत से आर्य्य भाइयों सहित नकोदर में पहुंचे। चार दिन बराबर धूमधाम से व्याख्यान होते रहे। एक साधु और एक पौराणिक पंडित के साथ मूर्ति पूजा विषय पर शास्त्रार्थ भी होता रहा, जिसमें दोनों निरुत्तर होगए। अन्तिम दिवस २५ सभासद् बनाकर आर्य समाज स्थापित किया।

जालन्धर से लाहौर पहुंच कर आर्य्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान को मिले और फिर सीधे सहारनपुर पहुंचे। वहां से १२ सितम्बर को कानपुर चल दिए। २० सितम्बर तक बराबर कानपुर में ऋषि जीवन सम्बन्धी अन्वेषण करते रहे और वहां बड़ी जन उपस्थिति में कई व्याख्यान दिए। सृष्टि उत्पत्ति विषय पर जो अन्तिम व्याख्यान था उसकी बहुत ही प्रशंसा हुई।

कानपुर से पंडित लेखराम सीधे प्रयाग पहुंचे। प्रयाग में ही उन दिनों श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज का स्थापन किया हुआ वैदिक यन्त्रालय भी था और पंडित भीमसेन और पंडित ज्वालादत्त भी उसमें काम करते थे। यहां पंडित लेखराम एक मास तक पत्र व्यवहार देखते रहे। इसी समय कुछ प्रूफ देखते हुए आर्य्य पथिक ने पंडितों की पोपलीला का पता लगा, वेदभाष्य का एक छपा हुआ अङ्क जलवा दिया था और उसका संशोधन करा कर फिर से छपवाया था। अपने पाठकों के समझाने के लिए यह लिखना आवश्यक है कि वेदभाष्य का संस्कृत भाग ऋषि दयानन्द का अपना लिखवाया हुआ है, परन्तु भाषार्थ सब पंडितों का किया हुआ है। जिन पंडितों ने मूल संस्कृत भाष्य में भी हस्तक्षेप करने से संकोच नहीं किया था वे भला भाषार्थ में कब चूकने वाले थे,

जहां सारा काम ही उनके हाथों में था। यहां पण्डित लेखराम के हलचल डालने का परिणाम था कि वेदभाष्य के अङ्कों के अवलोकन का भार कुछ प्रसिद्ध आर्य पुरुषों पर डाला गया था।

मिर्जापुर आर्य्य समाज के वार्षिकोत्सव का हाल सुनकर पण्डित लेखराम २४ अक्टूबर, १८६० ई० को उधर चल दिए। पहले दिन हवन के पश्चात् उसी विषय पर पण्डित लेखराम का युक्तियुक्त तथा सारगर्भित व्याख्यान हुआ। मेरे संवाददाता लिखते हैं कि ऐसा जबरदस्त व्याख्यान मिर्जापुर निवासियों ने पहले कभी नहीं सुना था। उसी दिन शाम को धर्म विषय पर व्याख्यान हुआ। दूसरे दिन आर्य्य समाज के दश नियमों पर अपना प्रसिद्ध व्याख्यान दिया जिसको सुनकर आबालवृद्ध सभी आर्य्य समाज के गुण गाने लगे।

आर्य्य समाज के सभासद् एक कलवार थे। पण्डित जी ने उन्हें समझाया कि जब वैश्य का काम करते हो तो यज्ञोपवीत से क्यों वंचित हो। सभासद् ने उत्तर दिया—"महाराज! मेरा यज्ञोपवीत यहां कौन करायगा?" वहां उत्तर में क्या देर थी "मैं कराऊंगा; देखूं कौन सा आर्य्य समाजी पण्डित है जो सम्मिलित न होगा।" बस फिर क्या था। यज्ञोपवीत का समय नियत किया गया। न केवल नगर के प्रसिद्ध लोग ही सम्मिलित हुए प्रत्युत पण्डित घनश्याम और रामप्रकाशादि जन्म के ब्राह्मण पण्डितों ने स्वयं संस्कार कराया और धर्मवीर लेखराम के धैर्य देने पर बिरादरी आदि की धमकियों की कुछ भी परवाह न की।

मिर्जापुर के एक वकील बड़े कट्टर मौलवी थे और साथ ही शहर के गुण्डों के सरदार। मिर्जापुर अपने गुण्डों के लिए प्रसिद्ध है। काशी तो गुण्डों के लिए जगत् विख्यात है, किन्तु

मिर्जापुर का लोहा उसने भी माना हुआ है। काशी की कजरी का एक पद है:—

"कासी जी में सोंटा चलेगा मिर्जापुर तरवार"

मिर्जापुर के गुण्डों के सरदार मौलवी वकील एक दिन पंडित लेखराम के साथ मजहबी छेड़ छाड़ के लिए पहुंचे। भला आर्य्य मुसाफिर के सामने ठहरना कुछ हंसी-ठट्ठा था; थोड़ी देर में ही निरुत्तर होकर चले गए। दूसरे दिन मुबाहसे की तय्यारी कर के आए। आर्य्य समाज के प्रधानादि ने उनकी नियत बद देखकर अस्वीकार किया, किन्तु धर्मवीर ने निर्भय होकर शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया। शहर में हुल्लड़ मच गया। आर्य्य भाइयों ने पंडित जी को बाहर जाने से मना किया किन्तु उन सबने सायंकाल को आश्चर्य के साथ देखा कि धर्मवीर अकेले डण्डा हाथ में लिए, पगड़ी का शमला छोड़े घूमने जा रहे हैं।

मिर्जापुर से पंडित लेखराम काशी को गए और मालूम होता है कि दो मास तक वहां ही आन्दोलन करते रहे। काशी के पंडितों के यहां आर्य्य पथिक ने बड़े चक्कर लगाए और पौराणिक पंडितों के विरोध का बराबर हाजिर जवाबी से मुकाबला किया।

सं० १८६१ ई० के जनवरी मास में पंडित लेखराम काशी से चल दिए। दो दिन रास्ते में डूमरांव राज में निवास करके १७ जनवरी, १८६१ के दिन दानापुर पहुंचे। १७ से १२ फरवरी तक दानापुर, बांकीपुर और पटना में ही काम किया। इन स्थानों में व्याख्यान भी हुए किन्तु बड़ी मनोरंजक वह वृत्तान्त पत्रिका है जो डाक्टर मुनीलाल शाह, पटना आर्य्य समाज के सामयिक प्रधान ने मेरे पास भेजी थी। यतः

यह पत्रिका बहुत समाचार पत्रों तथा धर्मवीर आर्य्य पथिक के जीवन वृत्तान्तों में छप चुकी है और यतः मुझे भी आगे चलकर इसमें लिखित विषयों पर अधिक प्रकाश डालना है, अतएव उस वृत्तान्त पत्रिका को डाक्टर शाह के शब्दों में ही मुद्रित कर देता हूं। डाक्टर शाह लिखते हैं:—

"जिन दिनों श्रीमान् पंडित लेखराम जी श्री १०८ श्री मद्दयानन्द सरस्वती जी महाराज का जीवन वृत्तान्त संग्रह करते हुए दानापुर से बांकीपुर पधारे थे और इस दीन पुरुष के निज गृह पर आ विराजे, उस समय यह पुरुष मेडिकल क्लास का विद्यार्थी और बांकीपुर आर्य्य समाज (बादशाही गंज) का मन्त्री था। श्रीमान् पंडित जी बांकीपुर में लगभग ६ दिन के ठहरे, इस बीच उनके मकान से एक तड़ित समाचार समाज के नाम अनायास पहुंचा तार द्वारा समाज से जिज्ञासा की गई थी कि पंडित जी जीवित हैं वा नहीं? किन्हीं दुर्जन यवन ने खबर भेजी थी कि पंडित लेखराम मारे गये !!

इस अपूर्व घटना का कारण मैंने पंडित जी से पूछा। पंडित जी ने उत्तर में यही कहा कि प्रायः यवन लोग हमारे मकान पर ऐसा ही अमंगल समाचार भेजा करते हैं अस्तु, तार का जवाब श्रीमान् पंडित जी के जीवित रहने का उसी क्षण में भेजा गया परन्तु मुझ को उसी दिन से यवनों के कुटिल बर्त्ताव का अशुभ ख्याल खटकने लगा। दूसरे दिन पंडित जी ने मुझको अधिक चिन्तित और उदासीन पाकर पूछा कि "आप आज क्यों मलीन देख पड़ते हैं? उत्तर में मैंने यही निवेदन किया कि महाराज! ऐसा न हो कि किसी समय में आपके ऊपर यवनों का आघात पहुंच जावे! आपको उचित है कि इस असभ्य मूर्ख कौम के लोगों से सोच विचार के बर्त्ताव

रखना"। पंडित जी विहस करके कहने लगे कि मन्त्री जी! मृत्यु एक दिन अवश्य ही है; किन्तु सच्चे धर्म के लिये शहीद होने के बराबर कोई दूसरी मृत्यु नहीं तवारीख पढ़ो और देखो कि इस जमीन के पर्दे पर जिन-जिन लोगों ने अपने धर्म के लिये गला दिया है, उस धर्म का कैसा प्रभावशाली उत्तम परिणाम निकाला है—बस, इन यवनों के विषय में अधिक उद्विग्न होने की कोई आवश्यकता नहीं—ऐसे तो ये लोग मुझ को गालियां देते, पत्थर फेंकते, हमारी तसनीफ की हुई किताबें जलवाते, जगह-ब-जगह यवन मत के पोल, इन दो किताबों 'तकजीब बुरा-हीन अहम्मदिया वा नुसखे-खब्त अहम्मदिया' के द्वारा खुल जाने से अभियोग खड़ा करवाते और नाना प्रकार के कुटिल बर्त्ताव बराबर उत्पन्न करने की कुचेष्टा किया करते हैं—परन्तु मैं इन पर कुछ ध्यान नहीं देता—हम लोगों को उचित है कि अपना कर्त्तव्य कर्म पालन करने में किसी प्रकार की त्रुटि न दिखलावें। मैंने पुनः पूछा पंडित जी! सत्यार्थ-प्रकाश का फारसी अनुवाद क्यों नहीं करते? उत्तर में पंडित जी ने यह कहा कि मन्त्री जी! सोच तो रहा हूं कि स्वामी जी महाराज का जीवन चरित्र समाप्त कर सत्यार्थ-प्रकाश का फारसी तर्जुमा कर यवन लोगों के मुख्य प्रदेशों की ओर, प्रस्थान करूं—मैंने पुनः पूछा कि मुख्य प्रदेशों से आपका क्या अभिप्राय है? पण्डित जी ने जवाब दिया कि अफगानिस्तान, परशिया, अरेबिया, तुर्किस्तानादि मिश्र देशों में भ्रमण कर वैदिक-धर्म का प्रचार करना ही हमारा मुख्य अभिप्राय है। मैंने पूछा क्यों पण्डित जी! बिना प्रतिनिधि की आज्ञा के आप कैसे जायेंगे? मन्त्री जी! मैं प्रतिनिधि के अधीन होकर जाने की इच्छा नहीं करता, वरन् स्वतन्त्रता के साथ उपदेश करना

चाहता हूँ ? पण्डित जी ! इन यवन देशों में आप बिना प्रतिनिधि की सहायता के अपनी आजीविका किस प्रकार निर्वाह करेंगे ? मन्त्री जी ! मैं चिकित्सा द्वारा अपनी जीवन वृत्ति धारण करूंगा पंडित जी ! क्या आपने इसमें कुछ परिश्रम किया है ? मन्त्री जी ! कुछ तो किया है और शनैः शनैः कर रहा हूं देखो हमारे पास बहुत से मुफीद नुसखें जमा हुए हैं—जब मैं एक स्थान से दूसरे स्थान जाता हूं तो चिकित्सा शास्त्र के जानने वालों से प्रायः मुलाकात किया करता हूं और जो-जो मुफ़ीद नुसखें उनके पास होते हैं चन्द उनमें से नोट कर लेता हूं—इसी अवसर में पण्डित जी ने नोट बुक निकाल कर मुझको भी (प्रार्थना करने पर) दो चार नुसखें धातु आदि के विषय में लिखवा दिये।

पण्डित जी ! कल दिन एक सनातन पौराणिक के यहां जलसा है, इसमें अनेक पण्डित गण दूर-दूर देश से आये हैं उन्होंने मुझको सूचना भेजी है कि आप भी अपने पण्डित के सहित आइये सो इस विषय में आपकी क्या सम्मति है ? श्रीमान् पण्डित जी ने उत्तर दिया कि अवश्य चलना चाहिये—तदनुसार हम लोग दूसरे दिन पौराणिकों के जलसे में शरीक हुए। पण्डित जी का व्याख्यान अवतारादि कल्पित विषय के खण्डन पर ऐसा प्रभावशाली और उत्तमता से हुआ कि पौराणिकों को चकाचौंध लग गया, उनमें से कोई निरक्षर लण्ठ कषाय वस्त्रधारी स्वामी जी के विरुद्ध में अण्ड बण्ड बकने लगा, पर पंडित जी ने थोड़े ही समय में उसका मुंह बन्द कर दिया—तत्पश्चात् सन्ध्या को हम लोग अपने स्थान पर लौट आए।

प्रतिदिन स्वर्गवासी पंडित लेखराम जी से धर्म सम्बन्धी

विषयों के ऊपर बात-चीत होते होते एक दिन उन्होंने पूछा कि मंत्री जी! ४० चालिस पारे का कुरान आपने देखा है वा नहीं? मैंने उत्तर दिया नहीं। पंडित जी कहने लगे कि मैं इस पुस्तक की खोज में बहुत दिनों से हूँ पर अद्यावधि प्राप्त नहीं भया। मैंने उनसे निवेदन किया कि इस स्थान पर एक बृहत् कुतुबखाना (Library) मौलवी खुदाबक्सखां बहादुर की है इस कुतुबखाने के बराबर कोई दूसरी इधर उधर नहीं है, प्रायः पुस्तकें उनके नबियों के और अरब मुल्क के प्राचीन मौलानों के तसनीफ किये हुए हैं सो इसको आप चल के मुलाहिजा कीजिये; शायद वह किताब मिल जाय। पण्डित जी समाचार सुनते ही बड़ी प्रसन्नता और हर्षपूर्वक उसी समय मुझको लेकर कुतुबखाने को आये और किताबें देखना आरम्भ किया, ईश्वर की कृपा से वही ४० पारे का कुरान जिसकी खोज में इतने दिनों से इच्छुक हो रहे थे, प्राप्त भया; पंडित जी ने प्रायः मुख्य-मुख्य विषयों को पिछले १० पारे में से नोट कर लिया और भी बहुत सी बातें अपनी डेली डायरी (रोजनामचे) में दर्ज कीं। इस कार्य्यवाही को देख के चन्द यवन लोगों ने जो वहां बैठे थे पंडित जी का नाम व तारीफ मुझसे पूछा पर मैंने किसी कारण वश नाम नहीं बतलाया। इसी क्षण में कुतुबखाने के मालिक भी पहुँच गये। उन्होंने अपने मौलवियों से सुना कि अमुक पंडित ने कुरान (४० पारे) से बहुत से विषय नोट किये। मालिक कुतुबखाना उस ४० पारे के कुरान के विषय में यों कहने लगे कि यह किताब बड़े कठिनता से प्राप्त भया है, अर्थात् जब वह पेशावर गये थे तब एक प्रतिष्ठित मौलवी ने कई सहस्र रुपये लेकर बेचा था, उस मौलवी ने मालिक कुतुबखाने से यों बयान किया था कि

यह कुरान (Persia) परशिया (ईरान) के बादशाह के दिवान ने अफगानिस्तान (काबुल) में भेजा था, उस आदमी से मुझको प्राप्त भया। अस्तु, पंडित जी से और भी बातें होने लगी, पंडित जी कार्य समाप्त होने पर अधिक न ठहरे और हम लोग अपने डेरे पर बातचीत करते हुए लौट आये।

दूसरे दिन हम लोग खड्गविलास नामक यन्त्रालय में पहुंचे वहां का समाचार मिला था कि उस प्रेस में "कवि वचन सुधा" जिसको बाबू हरिश्चन्द्र काशी से प्रकाशित करते थे पूरा-पूरा इस पत्र का File है? सुतरां पंडित जी ने File को मांगा और उन लोगों ने भी कृपया दे दिया। पंडित जी को जो कुछ नोट करना था सो सब लिख लिया; इस पत्र में स्वामी जी के विषय में अनेक उत्तम-उत्तम विषय प्रकाशित हुए थे, हुगली (Hoog y) शास्त्रार्थ इसी पत्र में प्रथम-प्रथम ज्यों का त्यों छपा था।

स्वामी जी का भ्रमण वृत्तान्त जब पंडित जी पटने का संग्रह कर चुके, तब कलकत्ता प्रस्थान करने की तय्यारी की। जब तक पंडित जी यहां ठहरे तव तक सभासदों को पूर्ण रूप से उत्साह देते रहे। आपके कई व्याख्यान पबलिक में हुए जिसका असर बहुत ही लाभकारी भया। पंडित जी कोई बात जब ऐसी सुनते थे जो उनके आत्मा को प्रिय न होता था तो उस पुरुष से बहुत शीघ्र रंज हो जाते थे परन्तु साथ ही यह रंज बहुत क्षणिक रहता था। कलकत्ता में मैं बराबर पंडितजी के साथ रहा और बहुत सी शिक्षा उनसे प्राप्त की - आपको तवारीख का बड़ा शौक था, अतएव बहुत से विषय का विस्तृत ज्ञान आप हासिल किये हुए थे"

१३ फरवरी सं० १८६१ के दिन आर्यपथिक बांकीपुर

से हौड़ा जाने वाली गाड़ी में सवार हुए और १४ फरवरी को कलकत्ते पहुंच कर आर्य्यावर्त्त समाचार पत्र के कार्यालय में डेरा दिया।

इसी वर्ष १२ अप्रैल को हरिद्वार के कुम्भ का स्नान था और एक मास पहले से ही बड़ा भारी मेला लगने वाला था। ऋषि दयानन्द के परलोकगमन के पश्चात् यह पहला ही कुम्भ था, और मैंने इस अवसर पर प्रचार के लिए बड़ा बल दिया था। मेरे लेखों को कलकत्ते में पढ़ कर आर्य पथिक को भी बहुत जोश आया। उन्होंने ७ मार्च, १८९१ के आर्य्यावर्त्त में मेरे लेख के साथ सर्वथा सहमत होकर, मुझे आज्ञा दी कि उनके हिसाब में से ५) रुपया आर्य समाज जालन्धर के कोषाध्यक्ष से लेकर कुम्भ प्रचार फण्ड में दाखिल कर दूं। पण्डित लेखराम के लेख पर पंजाब और संयुक्त-प्रान्त की आर्य प्रतिनिधि सभाएं भी जाग उठीं और मुझे आज्ञा हुई कि प्रचार का प्रबन्ध करने के लिए हरिद्वार चला जाऊं मेरे हरिद्वार पहुंचने के तीन दिनों के पश्चात् ही पण्डित लेखराम जी भी कलकत्ते से ५०) चन्दा करके साथ लिए पहुंच गए थे और जब कार्यवशात् मुझे प्रचार के बीच में से ही जालन्धर लौटना पड़ा तो मेरे निवेदन पर पण्डित जी ने राजकुमार जन्मेजय को प्रबन्ध के काम में बड़ी सहायता दी थी पण्डित जी इससे पहले मुझे साधारण परिचित आदमियों में समझा करते थे परन्तु कुम्भ प्रचार के लिए मेरी अपीलों को पढ़कर वह मुझ से अधिक प्रेम करने लग गए थे। वह ऋषि दयानन्द के बड़े भक्त थे और ऋषि के चरणों में मेरी भक्ति को देखकर ही आर्य पथिक मेरे अधिकतः समीप हो गए थे।

कुम्भ प्रचार की समाप्ति पर पण्डित लेखराम मेरे पास

जालन्धर आए और आर्य प्रतिनिधि सभा की आज्ञानुसार कुम्भ प्रचार का हाल एक उर्दू ट्रेक्ट की शकल में छपवाया।

लाहौर में पहुंचते ही समाचार मिला कि सिन्ध हैदराबाद में आर्य जाति के कुछ भूषण महम्मदी तथा ईसाई मतों की ओर झुक रहे हैं। इस पर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान की आज्ञा पाकर पंडित लेखराम ने उधर को प्रस्थान किया।

सक्खर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होने के लिए पण्डित लेखराम वैशाख १६४८ के अन्त में चले गए थे। स्वामी (वर्त्तमान पण्डित) पूर्णानन्द जी भी "द्वावा गुरुदासपुर उपदेशक मंडली" की ओर से उक्त उत्सव में सम्मिलित थे। वहां विस्तृत समाचार मिला कि महम्मदी मत का (सिन्ध) हैदराबाद में जोर है, और साथ ही यह भी पता लगा कि एक आमिल रईस अपने दो लड़कों सहित महम्मदी मत स्वीकार करने को तय्यार है। इससे बढ़कर यह प्रसिद्ध था कि कई युवक ईसाई मत की ओर अधिक झुक रहे हैं।

आर्य्य पथिक यह समाचार सुनकर चुपके से कैसे लौट सकते थे; श्री पूर्णानन्द जी सिन्धी भाषा जानते थे, इसलिए उन्हें साथ लेकर पण्डित लेखराम ने हैदराबाद का रास्ता लिया। ज्येष्ठ, १६४८ के आरम्भ में ही ईसाई और महम्मदी मतों के खण्डन की हैदराबाद में धूम मच गई। ईसाई मत से युवकों को हिलाने के लिए आर्य पथिक ने उसी स्थान में एक लघु पुस्तक तय्यार किया जिसका शीर्षक रक्खा—"क्या आदम और हव्वा हमारे पहले वालदैन (माता पिता) थे?" इस लेख में युक्ति तथा प्रमाण द्वारा सिद्ध किया कि एक मा बाप की सन्तान सारी मनुष्य सृष्टि सिद्ध नहीं होती। इसी प्रबल लेख का सार अपने व्याख्यान में देकर पण्डित लेखराम

ने ८ वा १० आर्य्य जाति के युवकों को ईसाई मत के गढ़े से गिरते गिरते खींच लिया।

सिन्धी रईस,जो महम्मदी मत की ओर झुक रहे थे, दीवान सूर्यमल जी थे। आर्य्य पथिक के हैदराबाद पहुंचने पर वह स्वयं तो अपने इलाके अलीपुर की ओर चले गए, किन्तु उनके दोनों पुत्रों को पण्डित लेखराम जी ने जा घेरा। मेरे पास उस समय का सारा पत्र व्यवहार मौजूद है जिस से पण्डित जी की हिम्मत और उनके धर्म रक्षा में उत्साह का पता लगता है। हैदराबाद पहुंचते ही हमारे धर्मवीर दीवान सूर्यमल के पुत्रों के पास गए। बड़े का नाम दीवान मेवाराम था। ये युवक पण्डित लेखराम को टालना चाहते थे; किन्तु लेखराम भला कोई टलने वाले आसामी थे! दूसरी, तीसरी, चौथी वार फिर गए और आग्रह किया कि जिस मौलवी पर उन्हें पूर्ण विश्वास हो उसके साथ मुबाहसा कराके सत्यासत्य का निर्णय करा लें। फिर पत्रों की भर-मार कर दी। तब मजबूर होकर मौलवियों को सामने आना पड़ा। मौलवी सय्यद महम्मद अली शाह के साथ सबसे पहला मुबाहसा हुआ। विवादास्पद विषय यह था कि महम्मद साहेब के पास मोजजे (Miracles) करामात थे वा नहीं। मौलवी साहेब तङ्ग आ गए और कुछ उत्तर न दे सके। तब दूसरे मौलवियों ने पत्र-व्यवहार शुरु किया। मौलवी महम्मदसदीक, हाजीसय्यद-गुलाममहम्मद, मुफतीसय्यद फाजिलशाह, सय्यद-हैदरअली-शाह—इन चार महाशयों की ओर से बड़े-बड़े लम्बे पत्र आए। पण्डित लेखराम ने सिन्धी और उर्दू के पत्रों के उत्तर उर्दू में और फारसी के पत्रों के उत्तर फारसी भाषा में दिए। इस पत्र व्यवहार के पढ़ने से पण्डित लेखराम की योग्यता का बड़ा उत्तम

प्रमाण मिलता है। इस बड़े प्रयत्न का परिणाम यह हुआ कि दीवान सूर्यमल के दोनों पुत्रों को महम्मदी मत से घृणा हो गई और एक कुलीन आर्य्य परिवार की रक्षा का सौभाग्य आर्य्य पथिक को प्राप्त हुआ। यह जानना इस स्थान में मनोरंजक होगा, कि प्रसिद्ध ब्रह्मसमाजी वक्ता श्री प्रिन्सिपल वसवानी एम. ए. उन दिनों हैदराबाद में विद्यार्थी थे और उनके दिल में अपने धर्मशास्त्रों का गौरव, पण्डित लेखराम से बातचीत करने और उनके व्याख्यान सुनने से बैठा था।

लाडकाना के कुछ बलात्कार से मुसमलमान किए हुओं का प्रार्थना पत्र पंडित जी के पास हैदराबाद में ही पहुंचा था। उन लोगों ने शुद्ध होकर आर्य्य समाज में प्रविष्ट होने की प्रार्थना की थी। किन्तु बीमार हो जाने के कारण उस समय पंडित लेखराम उनकी प्रार्थना को स्वीकार न कर सके। परन्तु लेखराम का शुभ सङ्कल्प फिर फलीभूत हुआ और अनेक कष्ट सहन करके उनमें सैकड़ों भाई वैदिक-धर्म की शरण में आकर परमार्थ रूपी धन को संचय कर रहे हैं। हैदराबाद (सिन्ध) में ही पंडित लेखराम ने "क्रिश्चियन मत दर्पण" की तय्यारी शुरू कर दी थी और सृष्टि उत्पत्ति तथा उसके इतिहास पर जो गवेषणापूर्वक व्याख्यान उक्त पण्डित जी दिया करते थे उस सबका विस्तार पूर्वक वर्णन "तारीख-ए दुनिया" नामी ट्रेक्ट रूप से उन्हीं दिनों तय्यार किया गया था। सितम्बर (१८६१ ई०) मास में पिछला ट्रेक्ट छप चुका था, जिसकी समालोचना २६ भाद्रपद, सं० १६४८ के प्रचारक में प्रकाशित हुई थी।

मालूम होता है कि सिन्ध हैदराबाद से लौटकर पण्डित लेखराम अधिकतः पंजाब में ही काम करते रहे। मण्टगुमरी

आदि समाजों में व्याख्यान देकर लाहौर पहुंचे और वहां पौराणिक मतखंडन के व्याख्यानों की झड़ी लगा दी। फिर ११ अक्टूबर को अमृतसर आर्य्य समाज के वार्षिकोत्सव के समय "आर्य्य-धर्म" पर ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा सार-गर्भित व्याख्यान दिया। इसी व्याख्यान की प्रशंसा सद्धर्म्म-प्रचारक में करते हुए मैंने देशभाषा के शार्टहैंड की आवश्यकता जतलाई थी

नवम्बर के अन्तिम सप्ताह में पंडित लेखराम लाहौर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित रहे जहां २६ नवम्बर को अन्तिम व्याख्यान उनका हुआ, जिसमें उन्होंने सारे संसार के मतों का मुकाबिला करके सिद्ध किया कि केवल वैदिक-धर्म ही मनुष्य को शान्ति दे सकता है।

दिसम्बर के दूसरे सप्ताह में साधु केशवानन्द उदासी के शोर मचाने पर पंडित लेखराम जी को तार देकर आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री जी ने बुलाया और नाहन राज में भेजा। साधु केशवानन्द के साथ महाराजा साहेब के सामने बातचीत भी हुई और फिर आर्यपथिक के चार व्याख्यान हुए जिसके पश्चात् नाहन में आर्य समाज की स्थापना हुई।

राजपूताना के साथ विशेष सम्बन्ध

ऐसा मालूम होता है कि नाहन के शास्त्रार्थ और वहां आर्य समाज स्थापन करने के पश्चात् पंडित लेखराम कुछ दिन और पंजाब में काम करते रहे क्योंकि २१ मार्च, १८९२ को उन्होंने मियानी (जि० शाहपुर) में नवीन समाज स्थापित किया था, और फिर राजपूताने की ओर गए। पहली बार जो सम्बन्ध बाबू रामविलास शारदा जी तथा अजमेर के अन्य आर्य पुरुषों से हुआ था वह इस बार अधिक दृढ़ किया। विशेषतः स्वर्गवासी वजीरचन्द्र जी के वहां होने से आर्य पथिक को उस प्रांत

से बड़ा प्रेम हो गया था। इस वार जून १८६२ ई० तक पंडित लेखराम बराबर राजपूताने में हो ऋषि जीवन की घटनाओं का पता लगाते रहे। राजपूताने के सर्व प्रसिद्ध रईसों, ठाकुरों और प्रतिष्ठित पुरुषों से मिल कर जो वृत्तान्त आर्यपथिक ने लिखा था वह सब जीवन चरित्र में छप चुका है।

इन दिनों की एक घटना पंडित जी के स्वभाव को दो अंशों में बड़ी विस्पष्टता से प्रगट करती है। बूंदी राज में जाकर ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी तथा स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी ने शास्त्रार्थ की धूम मचा दी थी। आर्य पुरुषों को जब यह पता लगा तो उन्होंने दोनों संन्यासी महात्माओं की सहायता के लिए आर्य पथिक को भेजा। कुछ लोगों ने डराया भी कि रियासत का मामला है, कहीं कष्ट न मिले; परन्तु धर्मयुद्ध का नरसिंहा जब बज गया तो लेखराम को रोकने वाली कोई भी शक्ति नहीं थी। अकेले सिंह की न्याईं सीधे बूंदी में पहुंचे। वहां जाकर पता लगा कि महाराजा साहेब के विशेष शास्त्रार्थ से इनकार कर देने पर दोनों संन्यासी महात्मा लौट गए हैं। पंडित लेखराम भी जहाजपुर में लौट आए, जहां सायंकाल को पहुंचते ही इनके व्याख्यान का विज्ञापन जहाजपुर के हाकिम ने (जो आर्य सामाजिक थे) घुमा दिया। रात को व्याख्यान में सर्वसाधारण के साथ फौज के सिपाही और अफसर भी आए; उनमें से पैदल का सूबेदार मुसलमान था। आर्य पथिक ने अन्य विषयों के साथ महम्मदी मत का भी कुछ कड़ा खंडन किया। इस पर मुसलमान सूबेदार ने दिल्लगी में कहा—"ऐसे ही तीस-मारखां थे तो बूंदी से क्यों भाग आए।" हाजिर जवाब लेखराम को सोचने की जरूरत न थी; उत्तर दिया—"विपत्ती शास्त्रार्थ से भाग गया और हम लौट आए;कुछ

आं हजरत (अर्थात् महम्मद साहेब) की तरह हिजरत करके (भाग कर) तो नहीं आए।" इस पर मुसलमान सूबेदार की आंखें लाल हो गईं और उसने तलवार के कब्जे पर रक्खा। वीर लेखराम ने गरजते हुए कहा—'मुझे तलवार की धमकी दिखाता है; अगर है पठान का तो तलवार निकाल कर मजा देख।" हाकिम ने मुसलमान सूबेदार को अलग बैठा दिया और फिर किसी ने चूं तक न की।

अजमेर के सम्बन्ध में यहां बाबू रामविलास शारदा जी के पत्रों से कुछ उद्धृत करता हूँ जिससे आर्य पथिक क स्वभाव और काम पर बड़ा प्रकाश पड़ता है:—

"स्वामी दयानन्द सरस्वती को छोड़कर जिनके विषय में कुछ नहीं जानता क्योंकि मैं उन दिनों कालेज में पढ़ता था और आर्य समाज का सभासद् नहीं था, मैंने जितने संन्यासी तथा उपदेशक देखे हैं ऐसा सच्चा दृढ़ सोहकिरु निर्लोभी, परिश्रमी, जितेन्द्रिय अपने समय को व्यर्थ न खोने वाला एक भी मनुष्य नहीं देखा। व्याख्यान देने तथा लोगों की शंका समाधान करने के अलावा जो समय उनको मिलता था वह प्रायः पुस्तक देखने तथा वैदिक धर्म के विरोधियों को उत्तर देने में लगाया करते थे।

आर्य्य समाजों की अन्दरूनी हालत पर निहायत अफसोस किया करते थे और कहते थे कि तुम्हारे लोगों में पोप घुसे हुए हैं जो मौका पाकर समाजों का सत्यानाश कर डालेंगे और वे पं० भीमसेन का नाम अकसर इस सिलसिले में लिया करते थे और उनकी हेर-फेर वाली इबारत पर अकसर अत्यन्त क्रोधित होते थे। लोग इस विषय में पंडित जी को कट्टर बतला कर टाल दिया करते थे परन्तु जो लोग उनसे भले प्रकार विज्ञ

थे वे जानते थे कि धर्मवीर आर्य्य पथिक का एक-एक शब्द ठीक था। पंडित जी से देश सुधार व वैदिक धर्म के प्रचार के विषय पर जब २ बातें होतीं तो आप फरमाया करते थे कि आर्यावर्त्त का उद्धार उस समय तक नहीं होगा जब तक कि लोग वेदों पर पूरा २ विश्वास नहीं करेंगे। नवीन वेदान्तियों व अन्य लोगों की दूरदर्शिता से यह खयाल आम तौर से फैल रहा है कि उपनिषद वेदों से आला है। भोले लोग यह नहीं जानते कि यह वेदों से ही निकले हैं, कई तो उन के सूक्त के सूक्त ही हैं। मेरा विचार उपनिषदों का तरजुमा करने का है जिस की भूमिका में यह सब मसले हल करूंगा। और लोगोंके दिलों में वेदों की बजरगी बिठलाने का यत्न करूंगा। शोक यह है कि पण्डित जी के दिल की दिल में ही रही।

इस बात का विचार मुद्दत से था कि आर्य्य पुरुषों के पढ़ने योग्य पोपलीलासे रहित निर्भ्रान्त मनु-भाषा टीका छपवाई जावे। मैंने इस विचार को पण्डित जी के सामने पेश किया तो आपने इस का भाषान्तर करना मंजूर किया; आप फरमाते थे कि मैंने २६ मनुस्मृतियें इकट्ठी की हैं और जो कश्मीर से मनुस्मृति हाथ लगी है वह बहुत नायाब है। आर पण्डित गुरुदत्त जी के नोटों के विषय में भी कहते थे और फरमाते थे कि श्रीमान् शाहपुराधीशों ने भी जिन्होंने तीन महिने तक मनुस्मृति को श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी से पढ़ा था बहुत कुछ बातें बतलाई हैं। छपाई आदि के विषय में सब शरतें निश्चित होने पर आपने कार्य आरम्भ भी कर दिया था और एक अध्याय का भाषान्तर कर भी दिया था जो उन के कागजों में मौजूद है और मेरे नाम से एक विज्ञापन भी लिख रक्खा था। इसके पश्चात् मैंने अपने शास्त्रोद्धार का स्कीम

पेश किया जिस में वेदों, उपनिषदों, छः शास्त्रों का भाषान्तर व महाभारत व वाल्मीकि रामायण के सार व सूर्य्य सिद्धान्त, चरक, शुश्रुत आदिका छपवाना, बाद निकालने परिक्षिप्त श्लोकों के किया। आपने फरमाया कि मनुभाष्य के पश्चात् वे वाल्मीकीय रामायण को लेवेंगे जिस के लिये उन्हों ने मसाला तय्यार कर रक्खा था। आप का विचार एक प्राचीन इतिहास लिखने का भी था और अंग्रेजी की (Nineteenth-century) के मुआफिक एक मासिक रिसाला निकालने का इरादा रखते थे जिसमें आर्यावर्त्त के सब विद्वान् आर्य्य भ्राता मजमून भेजा करें। अजमेर से भी दो एक नाम आपने लिखे थे। आपने यहां स्वामी जी के जीवन चरित्र के मुत्तालिक बहुत दिनों तक काम किया था और यहां के मशहूर हकीम पीर जी से थोड़ासा मुबाहसामी हुआ था जो कि पीछे इनकी बड़ी तारीफ किया करते थे। आप पादरीग्रे, मौलवो मुरादअली, पंडित शिवनारायण जो शास्त्री आदि बहुत से लोगों से मिले थे जिसका पूरा २ हाल स्वामी जी के जीवन चरित्र के लेखों से मिल रहा है। आप के अजमेर में कम से कम १५ व्याख्यान हुए होंगे जिनमें बावजूद (Oraecry) न होने के लोग बहुत संख्या में जमा होते थे और बहुत ही सन्तुष्ट होकर घर को जाते थे। इतिहास व प्राचीन तहकिकात से भरे हुए ऐसे व्याख्यान लोगों ने कभी नहीं सुने और अब तक तारीफ किया करते हैं।"

इन्हीं दिनों पंडित लेखराम जी ने 'वैदिक विजय पत्र" से जिहाद विषयक लेखों को इकट्ठा कर के "रिसाला जिहाद" छपवाया था क्योंकि उस की समालोचना १४ मई, १८९२ के सद्धर्म-प्रचारक में निकली थी।

ऐसा मालूम होता है कि पंडित लेखराम जून के अन्तिम

सप्ताह वा जूलाई के आरम्भ में फिर राजपूताने से लौट आए थे क्योंकि उन के लिखे हुए "कस्तूरी की प्राप्ति" विषयक दो लेख १६ जुलाई और २७ अगस्त के प्रचारक में दर्ज हुए हैं। पहला लेख भेजते समय पंडित लेखराम जी लाहौर में थे और दूसरा लेख उन्हों ने मुजफ्फरगढ़ आर्य्य समाज से भेजा था। २३ जुलाई १८९२ के प्रचारक में बखशी सोहनलाल (वर्तमान आनरेबल तथा रायबहादुर) के मांस भक्षण समर्थक लेख का उत्तर भी आर्य्य पथिक का लाहौर से भेजा हुआ ही छपा है। फिर ३ और १० सितम्बर के प्रचारक में वृक्षों में जीव सम्बन्धी विचारपूर्ण दो लेख पंडित लेखराम के लहिय्या (जिला डेरा इस्माइलखां) से भेजे हुए छपे हैं। मालूम होता है कि डेराजात के जिलों में धर्म-प्रचार करने के पश्चात् पंडित लेखराम सीवी (बलोचिस्तान) में स्वामी नित्यानन्द सरस्वती जी सहित पंडित प्रीतम शर्मा पौराणिक के साथ शास्त्रार्थ करने के लिए गए थे क्योंकि उन का वहां २२ जुलाई १८९२ को पहुंचना प्रचारक में छपा है।

प्रीतमदेव ने तो शास्त्रार्थ से पीछा छुड़ना चाहा किन्तु उसी शाम को उस से १०० गज की दूरी पर पंडित लेखराम का सिंहनाद सुनाई देने लग गया। पंडित प्रीतम शर्मा ने तो स्वामी नित्यानन्द जी के सामने आकर शास्त्रार्थ को क्वेटे के लिए मुलतवी किया और २४ जुलाई को चल दिया; परन्तु पंडित लेखराम जी चार पांच दिनों तक स्वामी जी के साथ सीवी में ही व्याख्यान देते रहे। फिर क्वेटे से होते हुए ११ सितम्बर को कसूर (जि० लाहौर) आर्य्य समाज में जाकर एक व्याख्यान दिया। २८,२९ सितम्बर को हम पण्डित

लेखराम को अमृतसर आर्य्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित पाते हैं। अक्टूबर मास के आरम्भ में पंडित लेखराम जी जालन्धर पहुंचे। उन दिनों छावनी में जाटों का रिसाला नम्बर १४ था जिसका अधिक भाग आर्य्यसमाजी था। पंडित लेखराम जी का एक व्याख्यान सदर बाजार में हुआ, और फिर दो व्याख्यान चौदहवें रिसाले में हुए। वह दृश्य भूलने योग्य नहीं, क्योंकि मैंने आर्य्य पथिक के साथ २ वहीं व्याख्यान दिए थे। रिसाले का अपना बडा शामियाना लगा कर मण्डप खूब सजाया गया। छावनी के तीन चार-सौ श्रोताओं के मध्य चार पांच सौ सवार वर्दी पहिन कर अपने सर्दारों सहित उपस्थित रहते थे। अंग्रेज ऑफिसर भी दोनों दिन व्याख्यानों में आते रहे और व्याख्यान सुन कर बड़े प्रसन्न होते रहे।

जालन्धर से पण्डित लेखराम पोठोहार (पंजाब प्रान्त) में प्रचार के लिए गए। १६ अक्टूबर को उन का व्याख्यान आर्य्य समाज भवन (जिला झेलम) में होना समाचार पत्र में छपा है।

इस के पश्चात् पता लगता है कि ऋषि दयानन्द के जन्म स्थान की तलाश में पंडित लेखराम फिर राजपूताने की ओर चल दिए। बहुत से विश्वस्त पुरुषों से पता लगा कि स्वामी जी का जन्म-स्थान मोरवी राज में है, इसलिए अजमेर से आर्य्य पथिक अहमदाबाद को चल दिए। मैं बतला चुका हूं कि बाबू रामविलास शारदा जी पर आर्य्य पथिक का बड़ा विश्वास था इसलिए काठियावाड़ से उन्हीं के नाम पत्र लिखते रहे। उस समय के लिखे हुए तीन पोस्टकार्ड मुझे मिले हैं। पहला ३० अक्टूबर, १८९२ को मोरवी से भेजा हुआ है।

उसमें बांकानीर के मार्ग से मोरवी पहुंचने का हाल लिख कर अपनी डाक महाशय काशीराम दुवे, एम. ए., हेडमास्टर मोरवी हाइस्कूल द्वारा मंगाई है और साथ ही याचना की है कि पण्ड्या मोहनलालादि से, स्वामी दयानन्द महाराज के जन्म-स्थान के विषय में, पूछ कर जो कुछ पता लग सके जानने वालों से लिखवा भेजें।

दूसरा पोस्टकार्ड १५ नवम्बर को मोरवी की डाक में डाला गया। इसका अनुवाद यह है—"एक पत्र आपका एक बनवरीलाल जी का, एक श्रीस्वामी आत्मानन्द जी महाराज का, एक मास्टर वजीरचन्द्र जी का पहुंच कर समाचार ज्ञात हुए। टिनवारा में मैंने (ऋषि दयानन्द के जन्म-स्थान की) बहुत ढूंढ की, पता न मिला। लोग मोरवी खास का बहुत खयाल करते हैं। अब वहां अन्वेषण कर रहा हूं। १४ वा १५ ग्रामों में ढूंढ चुका हूं।......मुझे १०, ११, १२ (नवम्बर १८९२) को ज्वर हुआ, बड़े जोर से; परन्तु अब सर्वथा निरोग हूं।......

"पंड्या जी का कोई पत्र नहीं आया। वेद-भाष्य-भूमिका के विषय में मैंने एक पत्र श्यामसुन्दर जी को लिखा था, फिर आप भी (उनको) स्मरण करावें। जब से आया हूं कोई (अङ्क) सद्धर्मप्रचारक पत्र (का) नहीं आया। यदि हो सके तो चार (पिछले) अङ्क भेज दें......इस ओर छूतछात का बड़ा झगड़ा और ज्वर का जोर है; आर्य्य समाज से लोग सर्वथा अभिज्ञ हैं.............." तीसराकार्ड ६ दिसम्बर को राजकोट से चला। इसमें लिखा है—"मैं २ दिसम्बर, १८९२ से राजकोट में आया था। यहां आठ दिन रहा। यहां का हाल मालूम किया, परन्तु कोई हाल स्वामी जी की

जन्म-भूमि के सम्बन्ध में न मिला। आज फिर बांकानेर जाता हूं और कई दिन वहां रहूंगा।............ बांकानेर प्रान्त के विषय में ही लोगों को सन्देह है कि शायद स्वामी जी उसी प्रान्त के हों। दूसरे मोरवी और बांकानेर (एक दूसरे से) बहुत समीप हैं।...... .....यहां पहले आर्य्य समाज था, परन्तु अब चिरकाल से टूट हुआ है; कोई भी आर्य्य पुरुष यहां नहीं है। लोगों से बातचीत होती रहती है; उपदेशकों की बहुत जरूरत है।"

पिछले दो कार्डों में एक और परिवर्तन देखा जाता है। जहां पहले पत्र और लिफाफा दोनों फारसी अक्षरों में होते थे, वहां इनमें लिफाफा देवनागरी अक्षरों में लिखा हुआ है, और कुछ काल के पश्चात देखा जाता है कि संस्कृत वा आर्य-भाषा जानने वालों के नाम आर्य्य पथिक के पत्र आर्य्य-भाषा में ही जाने लग गए थे।

इसी वर्ष "क्रिश्चियन मतदर्पण" मेरठ के विद्यादर्पण प्रेस में छप कर तय्यार हुआ जिसकी समालोचना १२ नवम्बर, १८९२ के सद्धर्म-प्रचारक में छपी है।

सं० १८९३ ई० के आरम्भ में ही पण्डित लेखराम ने स्वामी दयानन्द के जन्म-स्थान के अन्वेषण का काम समाप्त कर लिया था। यद्यपि इस समय टिनकारा के समीप ही जन्म स्थान का नया निश्चय नए आन्दोलन कर तो रहे हैं, तथापि आर्य्य पथिक ने जो निश्चय करना था उसे दृढ़ कर लिया और अजमेर में लौट कर अन्तिम व्याख्यान दे कुछ और आन्दोलन करते हुए आगरे में पहुंचे। वहां २५ फरवरी से १ मार्च सं० १८९३ ई० तक स्थानीय आर्य्य समाज के वार्षिकोत्सव पर तथा मित्र सभा में उनके व्याख्यान होते रहे।

आगरा आर्य्य समाज के उत्सव में धर्म्म-चर्चा के समय आर्य्य पथिक ने ऐसे सन्तोष-जनक उत्तर दिए कि प्रश्नकर्त्ताओं को भी मानना पड़ा कि उनकी तसल्ली हो गई है।

आगरा से मालूम होता है कि पंडित लेखराम जी फिर राजपूताने की ओर अपने पुरुषार्थ का फल प्राप्त करने अर्थात् ऋषि-जीवन के अन्वेषण का सारांश निश्चय करने के लिए चले गए क्योंकि २५, २६ मार्च, १८९३ को उन्होंने जयपुर आर्य्य समाज के वार्षिकोत्सव पर दो बड़े ही जनप्रिय व्याख्यान दिए।

इस समय पंजाब में घरू-युद्ध की अग्नि बड़े वेग से भड़क उठी थी और जिस आर्य्य प्रतिनिधि सभा और आर्य्य समाजों की संस्था के साथ पण्डित लेखराम आर्य्य पथिक आर्य्य समाजों में नाम लिखाने के दिन से काम करते आये, उसकी अवस्था बड़ी डांवाडोल हो चली थी। यह निश्चय करना कि वास्तविक अपराध किस दल का था, और इस बात की मीमांसा करना कि द्वेषाग्नि का पहला पलीता किसने छोड़ा, इस समय अनावश्यक है। इस विषय के पाप-पुण्य का ठीक गलों में मढ़ना उस समय होगा, जब किसी निष्पक्ष लेखनी से आर्य समाज का इतिहास लिखा जायगा; परन्तु यहां केवल इतना बतलाना है कि घरू युद्ध के कारण एक ओर तो सर्व साधारण आर्य-जनता का समूह और संस्था का बल था और दूसरी ओर यद्यपि जन-संख्या बहुत कम थी तथापि धन बल, राज बल तथा नीति बल अधिक था। सम्मति भेद के सब कारणों में से उस समय भक्ष्या-भक्ष्य का प्रश्न बहुत कुछ आगे बढ़ा हुआ था। स्त्रियों को उच्च शिक्षा देने का भी यद्यपि विरोध होता था, वैदिक-साहित्य की शिक्षा की मात्रा पर भी यद्यपि मतभेद था तथापि

मांस भक्षण वेद-विरुद्ध पाप है वा नहीं इस विषय पर बड़ा भारी युद्ध था।

ऐसी विपत्ति के समय में पण्डित लेखराम की पञ्जाब में बड़ी भारी आवश्यकता प्रतीत हुई। प्रबल सांसारिक नीति का मुकाबिला ढिलमुल विश्वासी केवल शान्ति का पाठ करने वाले स्वार्थी कैसे कर सकते? जिस प्रकार राजर्षि-गोविन्दसिंह महाराज अपने विश्वास-पात्र खालसों के विषय में कह सकते थे कि—"सवा लाख से एक लड़ाऊं" और जिस प्रकार अकेले नैपोलियन की रण-भूमि में उपस्थिति एक लाख सेना के तुल्य समझी जाती थी उसी प्रकार मानो ब्रह्मर्षि दयानन्द का आत्मा अवश्यवाणी द्वारा आर्य जनता से कह रहा था कि आर्य समाज की परिधि में यदि सर्व प्रलोभनों से बचकर कोई धर्म की सेवा कर सकता है तो वह लेखराम है। धन, मान, प्रतिष्ठा, प्रशंसा के वशीभूत होकर कई प्रचारकों तथा प्रतिष्ठित पुरुषों को गिरते देख आर्य प्रतिनिधि सभा के सामयिक प्रधान ने आर्य पथिक पण्डित लेखराम को पंजाब में बुला लिया।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान का निवास-स्थान जालन्धर शहर था, इसलिए राजपूताने से पण्डित लेखराम सीधे जालन्धर नगर में पधारे। १८ अप्रैल को स्थानीय आर्य मन्दिर में ऋषि दयानन्द के जीवन पर व्याख्यान दिया और इस व्याख्यान में ही पहली बार बतलाया कि आर्य समाज के प्रवर्त्तक के गुरु स्वामी विरजानन्द सरस्वती का जन्म-स्थान कर्त्तारपुर (जिला जालन्धर) के समीप एक ग्राम में है। इसी समाचार को २१ अप्रैल, १८९२ के प्रचारक में जतला कर मैंने लिखा था "सचमुच एक महात्मा का स्वदेशी होना एक गौरव की बात है परन्तु जालन्धरियों को भली प्रकार याद रखना

चाहिये कि यदि वे अपने आपको स्वामी विरजानन्द के स्वदेशी सिद्ध करना चाहते हैं तो उनको शम और दम की दृढ़ शिक्षा लेनी होगी।"

उसी समय आर्य पथिक पंडित लेखराम ने, प्रसिद्ध योगराज गूगल के बनाने वाले राय मूलराज बहादुर उप-प्रधान परोपकारिणी सभा से, सत्यार्थप्रकाश के उर्दू अनुवाद की आज्ञा मांगी थी किन्तु मांस भक्षण के विरोधी पण्डित लेखराम को ऐसी आज्ञा कैसे मिल सकती! मुझे पण्डित लेखराम जी की, इस विषय में, अकृत-कार्यता पर बड़ा शोक है, क्योंकि यदि एक पण्डित जी सत्यार्थप्रकाश का अनुवाद उर्दू में कर जाते तो जो अशुद्धियां अब आर्य समाजियों को निरर्थक शास्त्रार्थों में फंसाती हैं उनसे वह अनुवाद विमुक्त होता।

२८ अप्रैल १८९३, के प्रचारक से "आर्य समाज की जरूरत" पर एक लेखमाला आर्य पथिक की ओर से आरम्भ हुई है। इस लेखमाला में ऐतिहासिक दृष्टि से आर्य समाज की आवश्यकता जतलाई गई है।

जालन्धर से लाहौर होते हुए पंडित लेखराम झेलम आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए और शङ्का समाधान में भाग लेने के अतिरिक्त उन्होंने वैदिक धर्म की श्रेष्ठता पर एक सार-गर्भित व्याख्यान दिया। उससे पहले पण्डित लेखराम औरङ्गाबाद और सिधानी काला में व्याख्यान दे चुके थे।

झेलम से छुट्टी लेकर पण्डित लेखराम अपने निवास स्थान कहूटा में पहुँचे। वहां एक मास तक पण्डित जी रहे परन्तु वहां से भी लेख बराबर समाचार पत्रों में (विशेषतः प्रचारक में) भेजते रहे। उसी स्थान में उनके पास दीवान टेकचन्द्र (वर्तमान डिपुटी कमिश्नर) का पत्र इङ्गलैंड से आया था। उस पर जो

नोट आर्य मुसाफिर ने कहूटे से लिखकर भेजा था वह जतलाता है कि आर्योपदेशक का आदर्श वह क्या समझते थे। पण्डित लेखराम लिखते हैं—"विविध भाषाओं में सच्चे धर्म की पुस्तकों का अभाव, विविध भाषाओं द्वारा आर्य-धर्म के उपदेश करने वालों की कमी, देशान्तरों में आर्यसमाज का अस्तित्व अभाव के बराबर, धर्म के नाम पर जान न्योछावर करने वालों की आवश्यकता में प्रति सैकड़ा एक सौ की कमी और उस पर घर की फूट—त्राहि माम्! त्राहि माम्! प्यारे भाइयो! विचारो और समझो। (अंग्रेज) लोग सिविल सर्विस पास करके जब देखते हैं कि धर्म के प्रचार की जरूरत है तो झट उससे अलग हो धर्म के उपदेशक बनने के लिये प्रार्थनाएं करते हैं, फिर ईश्वर जाने स्वीकार हो वा न। इधर हमारे यहां की हालत वर्णन करने योग्य नहीं है········हमारे उपदेशकों में, थोड़े विद्वानों के अतिरिक्त, कई ऐसे भी हैं जो भोजन भट्टों की सूची में जाने योग्य हैं। क्षमा कीजिये, मैं वा अन्य कोई समाजों को भली प्रकार जानने वाला उन्हें उपदेशक नहीं मानता, क्योंकि वह तो खाकियों में खाकी, उदासियों में उदासी, निर्मलों में निर्मले और संन्यासियों में स्वामी······"

"आर्यसमाज की जरूरत" का शीर्षक देकर जो लेखमाला पण्डित लेखराम ने इन दिनों सद्धर्म प्रचारक में छपवाई थी, उसमें वह कहते हैं—"मई सं० १८८१ में जब लेखक (पंडित लेखराम) ऋषि दयानन्द की सेवा में अजमेर उपस्थित हुआ तब उन्होंने [ऋषि दयानन्द] ने कहा था कि आर्यसमाजों की ओर से एक अंग्रेजी मासिक वा समाचार पत्र निकलना चाहिये, जिसमें वेदों के मन्त्रों का अनुवाद देने के अतिरिक्त सार्वजनिक लाभ की बातें दर्ज हों।"

गृहस्थाश्रम में प्रवेश

वैशाख सम्वत् १९५० विक्रमी के आरम्भ में पण्डित लेख-राम पूरे ३५ वर्ष के हो चुके थे। इसी वर्ष के ज्येष्ठ मास में छुट्टी लेकर अपने निवासस्थान ग्राम कहूटा में गए और अपनी आयु के ३६ वें वर्ष के आरम्भ में मरी-पर्वतान्तर्गत भन्न ग्राम निवासिनी कुमारी लक्ष्मी देवी के साथ उनका विवाह संस्कार हुआ। ऋषि आज्ञा को शिरोधार्य समझते हुए पण्डित लेखराम ने विवाह तो किया परन्तु जहां तक उनसे हो सका वसु* ब्रह्मचारी पद से ऊपर उठने का प्रयत्न करते रहे।

ऐसा ज्ञात होता है कि पौराणिक पूजादि तो कहाँ साधारण जातीय रिवाजों की जंजीरों को भी पण्डित लेखराम ने इस विवाह पर तोड़ डाला था। हमारे चरित्र नायक के चचा श्री गण्डाराम जी लिखते हैं कि पण्डित लेखराम ने अपने विवाह पर पंजाब के रिवाजानुसार तम्बोल इत्यादि नहीं लिया था।

मुझे पण्डित लेखराम बतलाया करते थे विवाह होते ही उन्होंने अपनी धर्म पत्नी को पढ़ाना आरम्भ कर दिया था। देवी लक्ष्मी की अपने पति में अनन्य भक्ति थी और इसलिये वह उन्हें प्रसन्न करने का सदा प्रयत्न किया करतीं।

विवाह के पश्चात् पण्डित लेखराम कुछ दिनों और अपने ग्राम में रहकर अपनी धर्मपत्नी को धार्मिक शिक्षा देना चाहते थे परन्तु उस समय के धर्म-युद्ध में सहायता की आवश्यकता होने पर मैंने उन्हें बुलाया तो गृहस्थ के सब विचारों को शिथिल करके वह तत्काल ही मेरे पास आ पहुंचे।

---

*वसु वह कहलाता है जो २४ वर्ष की आयु के अन्त तक विवाह न करे।

जोधपुर में मांस का झगड़ा और आर्य्यपथिक का आक्रमण

लाहौर में जो मांस-भक्षण विषयक झगड़ा चला था उसको बहुत पुष्टि जोधपुर से मिली थी। जोधपुर राज के मुख्य प्रबन्धकर्त्ता तीन पीढ़ियों से अब तक महाराज मेजर जनरल सर प्रतापसिंह चले आते हैं। महाराज प्रतापसिंह थे और अब तक हैं भी तो ऋषि दयानन्द और वैदिक-धर्म के दृढ़ भक्त, परन्तु उनके मन में यह बात बैठ गई है कि मांस-भक्षण के बिना राजपूत जाति की वीरता स्थिर नहीं रह सकती। लाहौरमें आर्य समाज के दो दल हो जाने के पश्चात् स्वामी प्रकाशानन्द मांस-दल की ओर से जोधपुर पहुंचे। वहां उन्होंने यह लीला रची कि समाचार पत्रों के सम्पादकों तथा धर्मोपदेशकों से मांस-भक्षण के समर्थन में व्यवस्था दिलाई जावे। इसी लीला की पुष्टि में आर्य गजट, तथा भारत सुधार नामी मांस-भक्षण का समर्थन करने वाले समाचार पत्रों के सम्पादकों को पारितोषिक मिले। एक दो प्रसिद्ध आर्य पुरुषों ने भी महाराजा प्रतापसिंह की हां में हां मिला कर "रूप्योऽसौ भगवान् स्वयम्" के साक्षात् दर्शन किये। कुछ आर्य समाजी पण्डितों को भी भुर्सी दक्षिणा बांटी गई। तब सोचा गया कि कोई बड़ी चोट लगानी चाहिये। उस समय पंडित भीमसेन ऋषि दयानन्द के निज शिष्य समझे जाते थे, और मेरठ के पंडित गङ्गाप्रसाद एम०ए० स्वर्गवासी पंडित गुरुदत्त के पीछे उनके सदृश विद्वान् माने गये थे। इन दोनों महानुभावों को महाराजा साहब की ओर से निमन्त्रण गया। पण्डित भीमसेन फिसलने वाले प्रसिद्ध थे इसी लिये उनको ठीक अवस्था में रखने के लिये वीर आर्य्य पथिक को भेजा गया।

पण्डित भीमसेन और पण्डित गङ्गाप्रसाद एम. ए. दोनों २ अगस्त, १८६३ ई० के प्रातः जोधपुर पहुँचे। पण्डित गङ्गाप्रसाद को बहुत से लालच दिये गये परन्तु उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि धन वा प्रतिष्ठा का लालच इन्हें धर्म से च्युत नहीं कर सकता। ४ अगस्त को पण्डित भीमसेन जी की पहली भेंट महाराजा प्रतापसिंह से हुई। पण्डित भीमसेन ने यह तो कहा कि वेद में मांस-भक्षण का प्रत्यक्ष खण्डन है परन्तु यह मान कर कि हिंसक पशुओं का वध पाप नहीं, उन्होंने दबे दांतों ऐसे पशुओं के मांस के भक्षण का विधान कर दिया।

५ अगस्त को प्रातःकाल ही पण्डित लेखराम जी जोधपुर में पहुंचे और सारा हाल सुना। वीर आर्य्य पथिक ने पण्डित भीमसेन की खूब खबर ली, क्योंकि स्वामी प्रकाशानन्द ने झूठा समाचार फैलाया था कि पण्डित भीमसेन मांस भक्षण का समर्थन कर आए हैं। बेचारा भीमसेन बहुत गिड़गिड़ाया परन्तु धर्म वीर बिना ठीक प्रतिज्ञा कराए कब छोड़ते थे-"ईश्वर जानता है, अगर तूने महाराजा के पास स्पष्ट जाकर न कहा कि वेद में मांस-भक्षण का सर्वथा निषेध है तो तुझे किसी धार्मिक संस्था में पैर रखने के काबिल नहीं छोड़ूंगा।" पण्डित भीमसेन दूसरे दिन ही विदा होने गए और बिना पूछे ही महाराजा प्रताप सिंह से स्पष्ट शब्दों में कह दिया—"मांस-भक्षण पाप है। और वेदों में हानि-कारक पशुओं को दण्ड देने और अधिक हानि पहुंचाय तो मार डालने की भी आज्ञा है, परन्तु मांस उनका भी अभक्ष्य ही है। और मैंने जो यह कहा था कि उन के मांस खाने में अधिक दोष नहीं है, (सो) उसका यह आशय नहीं लिया जा सकता कि हानिकारक पशुओं का मांस खाना चाहिये, वा उसमें कोई दोष नहीं है। मेरा तात्पर्य यह

था कि ऐसे पशुओं के मारने में संसार की कुछ हानि नहीं है और उपकारी पशुओं के मांस खाने की अपेक्षा कम दोष है, परन्तु दोष अवश्य है। इसलिये हानि-कारक पशुओं का मांस भी नहीं खाना चाहिये, वह भी सर्वथा अभक्ष्य है" आर्य्य पथिक की धमकी ने इतना असर किया कि पण्डित भीमसेन के लिए जो १०००) भेंट का स्वीकार हुआ था वह आधा ही रह गया और पण्डित भीमसेन की आर्य्य पथिक पर इतनी श्रद्धा बढ़ गई कि उन्होंने जोधपुर से लौटते ही पण्डित लेखराम को "तारीख-ए-दुनिया" का आर्य्य-भाषा में अनुवाद कर के "ऐतिहासिक निरीक्षण" नाम से मुद्रित कर दिया और शायद इस प्रकार जोधपुर के ५००) की कमी पूरी की।

जोधपुर में मांस प्रचारकों का भंडा फोड़ कर कुछ दिनों ऋषि जीवन सम्बन्धी मसाला वहीं एकत्र करते रहे, परन्तु विरोधी उनके आक्रमण से ऐसे तङ्ग आगए थे कि उन्हें अधिक दिनों तक जोधपुर ठहरने में अपनी बड़ी हानि समझते थे। जहां कहीं आर्य्य पथिक आन्दोलन करने जाते महाराजा प्रतापसिंह का गुप्तचर साथ जाता। पहले हल्ले में जो कुछ घटनाएं लिखी गईं वह तो ठीक रहीं परन्तु उसके पश्चात् लोगों ने डरके मारे ऋषि जीवन सम्बन्धी घटनाएं ही बतलानी बन्द कर दीं। तब पण्डित लेखराम फिर पंजाब की ओर लौट आये।

जो पत्र जोधपुर से पण्डित लेखराम जी ने लिखे थे उनसे ज्ञात होता है कि प्रकाशानन्दादि के घोर विरोध पर भी आर्य-पथिक अपने काम पर डटे रहे और अन्त को सारा आन्दोलन करके ही लौटे।

इन्हीं दिनों अमेरिका के चिकागो नगर की प्रदर्शिनी की तय्यारियां हो रही थीं और आर्यसमाजों की ओर से कोई

विशेष प्रतिनिधि भेजने का विचार छिड़ रहा था। जोधपुर में ही राव राजा तेजसिंह से आर्यपथिक को पता लगा कि भास्करानन्द (जो महाराजा प्रतापसिंह का भेजा हुआ उन दिनों अमेरिका में था) चाहता है कि आर्य समाज उसे अपना प्रतिनिधि चुन ले। पण्डित लेखराम जानते थे कि वह धूर्त है अतएव उन्होंने आर्य जनता को सचेत कर दिया। दूसरी ओर साधु शुगनचन्द भी आशाओं में थे और अपनी वक्तृता के नमूने आर्य पथिक को दिखाते फिरते थे। पण्डित लेखराम ने स्वयं तय्यार करके एक अपील बाबू रामविलास जी को दी जो उन्होंने आर्य पब्लिक में मुद्रित कर दी। इस अपील में २०००) तो प्रचारक के मार्ग व्ययादि के लिए मांगा गया था और एक सुयोग्य अंग्रेजी के विद्वान् की सेवा मांगी थी। यह दूसरी बात है कि कोई भी आर्य पुरुष जाने को तय्यार न हुआ परन्तु आर्य पथिक के धर्मानुराग में इससे कोई क्षति नहीं हुई। यदि स्वयम् अंग्रेजी पढ़े होते तो अवश्य स्टीमर में बैठ कर चिकागो चल देते।

पंजाब में संस्था की दृढ़ता और धर्म प्रचार का यौवन

जोधपुर से लौट कर पंजाब में स्थान-स्थान से पंडित लेखराम की मांग आने लगी। जहां कहीं भी विरोधियों की ओर से आर्य समाज पर आक्रमण होता, रक्षा के लिये आर्य पथिक को ही कष्ट देना पड़ता।

पंजाब में लौटते ही पहला धावा पण्डित लेखराम का श्री गोविन्दपुर (जि० गुरुदासपुर) पर हुआ। २३, २४ सितम्बर सं० १८६३ को बराबर वार्षिकोत्सव मनाया जाता रहा जिसमें

पण्डित लेखराम का सर्वोत्तम व्याख्यान हुआ। परन्तु आर्य-पथिक के उच्च स्वभाव का इससे पता लगता है कि उत्सव का हाल प्रचारक में भेजते हुए जहां अन्य सब उपदेशकों के व्याख्यानों की बड़ी प्रशंसा की है वहां अपने व्याख्यान का साधारण वृत्तान्त कालम को २। पंक्तियों में समाप्त कर दिया है। मुझे आर्यपथिक के पत्र व्यवहार से भी प्रमाण मिले हैं और मैं स्वयम् भी जानता हूँ कि अन्य बहुत से उपदेशकों की शैली के विरुद्ध पण्ढित लेखराम का सदैव वह प्रयत्न हुआ करता था कि आर्यसमाज की वेदी से जो भी उपदेशक व्याख्यान देने खड़ा हो वह सर्व साधारण में कृत-कार्य होकर ही बैठे।

श्री गोविन्दपुर से लौट कर ऋषि-जीवन का वृत्तान्त एकत्र करते हुए पण्डित लेखराम मेरे पास जालन्धर पहुंचे और मुझे पेशावर आर्य समाज के उत्सव पर ले जाने के लिये आग्रह किया। मुझे इन्कार कब हो सकता था।

पेशावर की इस बार की यात्रा केवल इसी लिये स्मरणीय नहीं है कि मैं पहले पहल अटक से पार चला था प्रत्युत इस-लिये भी कि पण्डित लेखराम के कई पक्के विचार मुझे इसी यात्रा में मालूम हुए। पण्डित लेखराम पलाण्डु (पियाज) के बड़े पक्षपाती थे और समझते थे कि इसके सेवन से आर्य गृहस्थों को वञ्चित रखना अपनी जाति की शारीरिक अवस्था के साथ शत्रुता करना है। मुझसे पहले इस विषय पर बातचीत हुई। मेरे मनु का प्रमाण देने पर आपने कहा—"प्रथम तो पलाण्डु के अर्थ प्याज हैं ही नहीं, और यदि मान भी लो तो यह श्लोक ही प्रक्षिप्त है।"

फिर ब्रह्मावर्त की सीमा पर बातचीत छिड़ी। पण्डित

लेखराम जी ने पौराणिकों की मानी हुई सरस्वती का खण्डन करके बतलाया कि सरस्वती से तात्पर्य "ब्रह्मा पुत्रा" नदी का है जो भारत की पूर्वीय सीमा पर होती हुई समुद्र में जा मिलती है। आपने कहा—"सरस्वती ब्रह्मा की पुत्री कही जाती है, पुत्र का स्त्रीलिङ्ग हुआ पुत्रा; पस "ब्रह्मा पुत्रा" और सरस्वती पर्यायवाची शब्द हैं। सरस्वती कोई ऐसी नदी न थी जो मध्य भारत में कहीं छिप गई हो।" इसके पश्चात् आपने दृषद्वती से "अटक" महानदी का तात्पर्य लिया। यहां यह याद रखना चाहिए कि यदि सरस्वती पौराणिक कल्पना के अनुसार मानी जावे और "दृषद्वती" से ब्रह्मापुत्र नदी समझें तो पण्डित जी का निवास-स्थान कहूटा ब्रह्मावर्त में सिद्ध नहीं होता। अब दूसरी प्रभात की घटना समझ आ जायगी।

बातचीत करते २ हम दोनों सो गए। प्रातः उठकर मैं अपने विचार में निमग्न था कि रेल अटक के पुल के पास पहुंची और पण्डित लेखराम ने मेरी बांह पकड़ कर कहा—"लाला जी! उठिये, उठिये! देखिये क्या इससे बढ़कर कोई पत्थरों वाली नदी हो सकती है?" दृश्य बड़ा गम्भीर तथा उच्च था। मैं इस अपूर्व चित्तोत्कर्षक दृश्य की ओर टिकटिकी लगाये खड़ा था कि आर्य्य-पथिक के शब्दों ने झटका देकर जगा दिया—"लाला जी देखिये—यह पत्थरों वाली दृषद्वती नदी है, सरस्वती ब्रह्मपुत्रा है और इन दोनों देवनदों के मध्य का स्थान ब्रह्मावर्त है।" मैंने उत्तर में कहा—"पण्डित जी! मैंने आज मान लिया कि "कहूटा" ग्राम ब्रह्मावर्त्त का ही एक भाग है।" पण्डित जी के मुंह पर विशाल मुसकिराहट के चिन्ह दिखाई देने लगे और हंसते हुए बोले—"ईश्वर जानता है, आप मजाक में बात उड़ा देते हैं। मेरा मतलब तो इल्मी तहकी-

कात से था।"

व्याख्यानादि तो वार्षिकोत्सव में हुए ही परन्तु धर्म-चर्चा के समय बड़ा आनन्द आया। यह बात प्रसिद्ध थी कि पण्डित लेखराम वृक्षों में जीवात्मा की विद्यमानता नहीं मानते थे। एक मांस प्रचारक महाशय ने यह प्रश्न उठा कर कि वृक्षों में जीवात्मा है वा नहीं उत्तर पण्डित लेखराम से मांगा; तात्पर्य इस प्रश्न से यह था कि यदि वृक्षों में जीव विषय में मतभेद रखता हुआ एक पुरुष आर्य्य-समाजी रह सकता है तो मांस-भक्षण का प्रचार करने पर किसी को क्यों आर्य्य-समाज से अलग किया जावे। मैं यह कह कर, कि प्रश्न आर्य्य-समाज पर होना चाहिये न कि विशेष व्यक्ति पर, उत्तर के लिये उठा ही था कि पण्डित लेखराम स्वयम् उत्तर देने के लिये खड़े हो गये और निम्न लिखित मनोरञ्जक प्रश्नोत्तर हुये—

प्रश्नकर्त्ता—"क्या आप वृक्षों में जीव मानते हैं?"

उत्तर—"क्या एक जीव? एक वृक्ष में एक क्या अनेक जीव पाये जाते हैं और ऐसा ही मैं भी मानता हूं।"

प्रश्न—"मैंने तो सुना था कि आप वृक्षों में जीव नहीं मानते।"

उत्तर—"तुम अजीब भले आदमी हो। अब तो मैं तुम्हारे सामने हूं। सुनी सुनाई बात पर बुद्धिमान् पुरुष विश्वास नहीं करते। कल्पना करो कि वृक्ष को जीव-धारी ही मान लें तो ऐसी अवस्था में यह मानना पड़ेगा कि वृक्ष में जीव शुषुप्तावस्था में है। तब तुम्हारा बकरे आदि का मांस खाना क्या वृक्ष के फल खाने के समान होगा? भोले भाई! पशु पक्षी का मांस बिना हिंसा के उपलब्ध नहीं होता, और वृक्ष को तुम्हारे फल तोड़ लेने से कुछ कष्ट ही नहीं प्रतीत होता।"

श्रोतागण को पता लग गया कि प्रश्न कुटिल भाव से किया गया है और प्रश्न-कर्त्ता लज्जित होकर बैठ गया।

पंडित लेखराम की हाजिर जवाबी उन्हें बहुधा अनावश्यक वाद-विवाद से बचा दिया करती थी। एक बार रेल की यात्रा में एक उदासी साधु का साथ हुआ। बातचीत चलने पर उसने स्वामी दयानन्द को साधुनिन्दक सिद्ध करने के लिए कहा—"दयानन्द ने गुरु-नानक जी को दम्भी लिखा हैं और उन की निन्दा की है। यह संन्यासियों का काम नहीं।" पंडित लेखराम उदासी जी को बड़े प्रेम से समझाने लगे और कहा —"देखो बाबा नानक जी के आशय की तो स्वामी जी ने प्रशंसा ही की है। हां, वेदों की कहीं कहीं निन्दा उन से सहन न हुई और संस्कृत न जानते हुए भी उस में पग अड़ाते देख कर यह लिखा है कि दम्भ भी किया होगा........ " पंडित लेखराम ने बहुत कुछ समझाना चाहा परन्तु उस उदासी बाबा ने शोर मचा दिया और उन की एक न सुनी। मेरे शिर में कुछ पीड़ा थी इस लिए मैं स्टेशन आने पर दूसरे कमरे में चला गया। अगले स्टेशन के रास्ते में भी उदासी बाबा बहुत गरम रहे, किन्तु जब अगले स्टेशन पर रेल धीमी हुई तो अब उदासी जी दबे हुए से प्रतीत पड़े और पंडित लेखराम तेज सुनाई दिए। मैं भी फिर उसी कमरे में चला गया तो विचित्र दृश्य देखा। उदासीजी तो कुछ शान्ति की याचना कर रहे हैं और पण्डित लेखराम उन को दबा रहे हैं। मालूम हुआ कि जब समझाने पर उदासी दबाए ही चला गया तो पण्डित लेखराम ने कड़क कर कहा :—

"अच्छा अगर बाबा नानक खुद कह दे कि मुझ में दम्भ है। तो?" उदासी कुछ आश्चर्यित सा हो कर बोला "यह

क्या !" पंडित लेखराम ने सिक्खों के ग्रन्थ से एक वाक्य पढ़। जिस में दो तीन साधारण निर्बलताओं के साथ दम्भी शब्द भी था। अब तो उदासी बाबा कुछ ढीले हुए और जब मैं पहुंचा तो कह रहे थे —"यह तो कसर नफसी है। इस का यह म लब थोड़े ही है कि श्री गुरु-महाराज दम्भी थे।" हाजिर जवाब लेखराम ने उत्तर में दस घृणित पापों के नाम ले ले कर कहा —"यह सब पाप अपने में क्यों न बतलाए! तुम बाबा नानक को मक्कार समझते हो; हम तो उन्हें ईश्वर के सच्चे भक्त समझते हैं। उन्होंने मेरे कहे हुए दुराचारों का नाम इस लिए नहीं लिया कि उन में वह ऐब न थे। दो तीन कमजोरियां ही गरीब में थीं और उन से बचने की प्रार्थना अपने मालिक से की। तुम चाहे अपने गुरु को मक्कार समझो हम तो बाबा नानकदेव जी को सच्चा ईश्वर-भक्त समझते हैं।"

उदासी जी फिर कुछ गुन गुनाना चाहते थे परन्तु आर्य्य-पथिक ने यह कह कर बातचीत की समाप्ति कर दी —"बस साहब ! मैं तुम से बात करना भी पाप समझता हूं। तुम गुरु-निन्दक हो" और उदासी जी की वाणी पर ताला लग गया।

पेशावर के जलसे पर जाने से पहले पंडित लेखराम मांस-भक्षण के विषय पर एक प्रामाणिक ग्रन्थ लिखकर छपवा गए थे जिसकी समालोचना ६ कार्त्तिक सम्वत् १६५० के सद्धर्म-प्रचारक में निकली थी। इस लघु पुस्तक का नाम था "आर्य्य समाज में शान्ति फैलाने का उपाय और रामचन्द्र जी का सच्चा दर्शन।" वेद-शास्त्र के प्रमाणों से मांस भक्षण का स्पष्ट निषेध दिखलाते हुए स्वामी दयानन्द जी के मन्तव्य को

उनके ग्रन्थों से स्पष्टतया दिखलाया और अन्तिम भाग में "रामचन्द्र का दर्शन" नामी काव्य के कवि की इस कल्पना का (जो वह जन-साधारण में मौखिक फैलाते थे) कि रामचन्द्र जी ने मांस खाया, "रामचन्द्र जी का सच्चा दर्शन लिखकर प्रबल प्रमाणों तथा युक्तियों से खण्डन किया।

जिन सज्जनों को मांस का प्रचार अभीष्ट था और जो मांस-भक्षण से ही राष्ट्र में जीवन फूंकना सम्भव समझते थे वे प्रायः पंडित लेखराम को "पेशावरी गुण्डा" की उपाधि देते थे। यह इसलिए नहीं कि पंडित लेखराम कुछ अधिक कटु-वचन बोलते वा बहुत तीखा व्यक्तिगत आक्रमण करते थे, प्रत्युत इसलिए कि जहां औरों के कटाक्ष "व्यक्तिगत आक्रमण" कहकर टाले जा सकते थे वहां आर्य्य-पथिक की युक्तियों का युक्ति-युक्त उत्तर देना बड़ी टेढ़ी खीर थी। इसी लघु पुस्तक के प्रथम भाग में केवल प्रमाण दिए और उनका समर्थन युक्तियों से किया है। समाप्ति पर ग्रन्थ-कर्त्ता का केवल तीन पंक्तियों में निवेदन है—"पस सब वेद के मानने वालों को योग्य है कि यथार्थ सत्य-शास्त्र की रीत्यनुसार मद्य-मांसादि दुष्ट वस्तुओं को त्याग करके सदा उस भोजन का भोग करें जो रक्त युक्त न हो और जिसके लिए हमें निरापराधी पशुओं के गले पर छुरी न चलानी पड़े; यही ईश्वर की आज्ञा है।"

इस लेख को पढ़कर सर्व पाठकों को उन लोगों की बुद्धि पर आश्चर्य होगा जिन्होंने लेखराम को "पेशावरी गुण्डा" की उपाधि दी थी, परन्तु अन्याय का राज्य सदा के लिए नहीं रहता; समय आया जब उन्हीं उपाधि देने वालों ने लेखराम के पवित्र नाम से हिमालय की चोटियों तक को गुंजा दिया और सच्चे ब्राह्मण उपदेशक के चरणों में शिर नवाकर अपने किए

पाप का प्रायश्चित्त किया।

पेशावर से लौटने के पश्चात् हम पं० लेखराम को २८,२९ अक्टूबर रावलपिण्डी में और ३१ अक्टूबर १८९३ के दिन लाहौर में, "वर्तमान दशा और हमारे कर्त्तव्य" पर व्याख्यान देता पाते हैं। फिर नवम्बर के आरम्भ में उनका व्याख्यान जालन्धर आर्य-समाज में हुआ। शायद इसी सन् के सितम्बर मास में पं० लेखराम अपनी धर्म-पत्नी को जालन्धर ले आए थे और इसलिए यही नगर उनका निवास-स्थान बन गया था।

जालन्धर में ही बैठकर जहां एक ओर पं० लेखराम ने ऋषि जीवन की तय्यारी का आरम्भ किया वहां उन्हीं दिनों अपनी सबसे बड़ी पुस्तक "सबूत-ए तनासुख" नामी पुनर्जन्म को सिद्ध करने के लिए लिखकर पूर्ण कर ली और उसके छपाने का विज्ञापन भी सद्धर्म-प्रचारक में दे दिया। इस पुस्तक पर जो परिश्रम करना पड़ा होगा उसका अनुमान वे सज्जन ही लगा सकते हैं जिन्होंने संसार भर के मतवादियों के आक्षेप इस सिद्धान्त पर पढ़े हैं। बाहर वालों को एक सदा भ्रमण करने वाले यात्री की लेखनी से ऐसा अपूर्व ग्रन्थ तय्यार होते देखकर विस्मय सा होता था परन्तु मुझसे व्यक्ति को जिसने आर्य्य-पथिक को एक पल भी व्यर्थ गम्वाते नहीं देखा था कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ।

इन दिनों आर्य-समाज में घोर युद्ध की ज्वाला बड़े वेग से प्रज्वलित हो रही थी। लाहौर में आर्य्य समाज के दो टुकड़े हो चुके थे और आर्य्य प्रतिनिधि सभा के वार्षिकाधिवेशन में भी शिक्षित दल की सभ्यता का चमत्कार दिखाई दे चुका था। परन्तु पंडित लेखराम उस समय भी बाह्य विरोधियों के आक्रमणों से ही आर्य्य समाज की रक्षा करने में लगे हुए

थे। चारों ओर से महम्मदियों के आक्रमण रोकने के लिये आर्य्य-पथिक की मांग आती; इसीलिए २७ कार्त्तिक १६५० के प्रचारक में मैंने लिखा था—"ज्ञात हुआ है कि महाराजा कृष्ण प्रसाद जी पेशकार मन्त्री सेना विभाग(राज हैदराबाद दक्षिण) इसलाम की ओर झुके हुए हैं और आर्य्य-पथिक की मांग हो रही है। परन्तु कुरानाचार्य्य जहां एक ओर महर्षि के जीवन चरित्र की तय्यारी में सन्नद्ध है वहां दूसरी ओर शरीर को खेद भी है। लेकिन एक आदमी क्या कर सकता है...."

पंडित लेखराम को मैंने इन दिनों ऋषि जीवन वृत्तान्त की तय्यारी में निरन्तर लगा दिया था, परन्तु अपना नियत काम समाप्त करने पर उन्होंने जालन्धर के बाजारों में नित्य प्रचार करना आरम्भ कर दिया। परन्तु जालन्धर में भी आर्य-पथिक को बैठने कौन देता था। इसी वर्ष (सं० १८६३ ई०)के दिसम्बर में लाहौर नगर इंडियन नैशनल कांग्रेस का केन्द्र बन रहा था। राजनैतिकों के शिरोमणि दादा भाई नौरोजी प्रधान निर्वाचित हुए थे। दूर दूर के आर्य भाई भी आए थे। इस अवसर पर पंडित लेखराम को भी व्याख्यानों के लिये लाहौर बुलाना पड़ा। फिर लाहौर से लौटते ही समाचार आया कि शाहाबाद (जिला अम्बाला) के पास एक ग्राम में कुछ हिन्दू महम्मदी मत ग्रहण करने वाले हैं। पंडित लेखराम की लात में एक फोड़ा था जिससे वह तंग थे। मैंने तार सुनाया तो बिगड़ कर बोले—"आप लोग आदमी को मार डालते हो। भला ऐसे कष्ट में कैसे जा सकता हूं।" मैंने उत्तर दिया—"पंडित जी यह लोग बड़े निर्दयी हैं। समझते नहीं कि हर समय मनुष्य का स्वास्थ्य एकसा नहीं रहता। आप इस विषय में कुछ न सोचें, मैं उत्तर दे दूंगा।"

पंडित लेखराम मेरे कार्यालय के सामने वाटिका की दूसरी सीमा वाले कमरे में काम किया करते थे; वहां से चले गए। आध घण्टे के पश्चात् फिर मेरे पास आकर बैठ गए—"क्यों साहब! किसको भेजने का ख्याल है?" मैंने उत्तर दिया—"पंडित जी! यह लोग बड़े बेपरवा हैं। इनको स्वयं भुगतना चाहिए और क्या हो सकता है।" आर्य पथिक कुछ रुक रुक कर बोले—"वे गरीब क्या करेंगे; कुछ तो इन्तजाम होना चाहिए" मैंने उत्तर में कहा—"कहिए तो पंडित लालमणि को भेज दूं।" पंडित लेखराम मुसकरा कर बोले—'ईश्वर जानता है आपने मुझे कायल कर दिया; रात की रेल में ही चला जाऊंगा।"

पण्डित लेखराम जी की धर्म सेवा के भाव का यह एक ही दृष्टान्त नहीं है। मैंने यह एक नमूना पेश किया है।

शाहाबाद के पास वाले ग्राम में मुसलमान होने वालों को बचाकर, इस्माईलाबाद में तीन व्याख्यान दिये जिनके प्रभाव से पीछे वहां आर्य-समाज स्थापित हो गया। फिर शाहाबाद, थानेसर, और करणाल में व्याख्यान देकर जालन्धर लौट आये। शाहाबाद में आर्य-समाज का स्थापन होना भी इसी वार के प्रचार का फल था। इस धावे पर जाते हुये मैंने आर्य-पथिक से प्रतिज्ञा की थी कि छुट्टी के दिनों में मैं भी उनकी सहायता के लिये पहुँचूंगा, परन्तु उन्होंने शाहाबाद पहुंचते ही मुझे लिख दिया कि मेरी कुछ आवश्यकता नहीं। पण्डित लेखराम किसी को भी अनावश्यक कष्ट नहीं देते थे और यह देख कर, कि मेरी अनुपस्थिति में आर्य-प्रतिनिधि सभा पञ्जाब का काम बिगड़ेगा, उन्होंने अकेले ही सब काम कर लिया।

ऊपर लिखित सब काम करते हुये भी पण्डित लेखराम को अन्ध विश्वासों की पोल खोलने के लिये समय मिल जाता था।

२० जनवरी के ताजुल अखबार में एक समाचार निकला कि एक सय्यद जलाली की कब्र खुदवा कर टाउन हाल में मिलाने के कारण मुजफ्फर नगर का एक तहसीलदार अन्धा हो गया और जाइन्ट मजिस्ट्रेट पागल हो गये। पण्डित लेखराम ने समाचार पढ़ते ही अपने एक मित्र, मुजफ्फर नगर के रईस, से असल हाल पूछा जिनके पत्र से यह समाचार सर्वथा झूठा सिद्ध हुआ; और उस पत्र व्यवहार को पण्डित लेखराम ने २२ माघ १९५० के सद्धर्मप्रचारक में छपवा दिया।

फरवरी, १८९४ में मन्ट-गुमरी आर्य-समाज के वार्षिकोत्सव पर व्याख्यान देने के अतिरिक्त भङ्ग और कमालिया आदि स्थानों में प्रचार करते हुये लाहौर पहुंचे। इसी मास के प्रचारक में एक लेख माला आरम्भ हुई जिसे पण्डित लेखराम के धर्म पर बलिदान होने के पश्चात् "तकजीब बुराहीन अहमदिया" के दूसरे भाग में सम्मिलित किया गया था। इस लेख माला में अकाट्य प्रमाणों से सिद्ध किया गया है कि "असकन्दरिया" (मिश्र प्रान्त) का प्रसिद्ध पुस्तकालय मुहम्मदी पक्षपात की ही भेंट चढ़ा था।

ऋषि जीवन की तय्यारी के साथ साथ मौखिक-धर्म-प्रचार का कार्य भी बराबर जारी रहने का प्रमाण समाचार पत्रों के अवलोकन से मिलता है। १४ मार्च से २२ मार्च तक श्री गोविन्द-पुर तथा आस पास के ग्रामों में धर्म-प्रचार की धूम रही, शङ्का-समाधान खूब होता रहा। वहां से लौट कर कुरुक्षेत्र की भूमि में प्रचार के लिये पण्डित लेखराम मेरे साथ चल दिये।

जिस प्रकार चन्द्रग्रहण पर काशी में गङ्गास्नान का माहात्म्य है उसी प्रकार सूर्य-ग्रहण को कुरुक्षेत्र के तालाब में डुबकी लगाने से, पौराणिक मतावलम्बी, स्वर्ग प्राप्ति की कल्पना करते

हैं। ६ अप्रैल, १८६४ को सूर्यग्रहण होने वाला था और इस लिये २६ मार्च को ही सरकारी हस्पताल के पास सड़क के किनारे पर स्थान साफ कर के आर्य्य-समाज का प्रचार-मण्डप खड़ा कर दिया गया और अप्रैल के आरम्भ से ही वैदिक धर्म के प्रचार का काम शुरु कर दिया गया। इस प्रचार में शंका समाधान का काम प्रायः पण्डित लेखराम जी ही करते रहे। "धर्म की असलियत और उस का आन्दोलन" विषय पर जो व्याख्यान इस स्थान पर पंडित लेखराम ने दिया वह बड़ा ही चित्ताकर्षक था। दूसरे व्याख्यान में आप ने यह बतलाया कि आर्य्य-समाज ऋषियों की निन्दा नहीं करता बल्कि उन के सिद्धान्तों को फैलाता है। ६ अप्रैल को मेरे साथ पण्डित लेखराम कर्णाल चले आए जहां ७, ८ और ६ अप्रैल को आर्य्य-समाज के वार्षिकोत्सव में दो व्याख्यान देने के अतिरिक्त शंका समाधान भी खूब किया। वार्षिकोत्सव के पश्चात् मैं तो चला आया परन्तु आर्य्य-मुसाफिर एक मास तक कर्णाल में ही रहे क्योंकि जिस टाङ्ग के फोड़े के कारण मैं उन्हें शाहाबाद नहीं भेजना चाहता था वह फोड़ा इतस्ततः भ्रमण करते फिरने के कारण बहुत खराब हो गया था। इसी फोड़े के सम्बन्ध में एक मनोरञ्जक बात मुझे याद आई है। पंडित जी ने कुछ सभासदों से पूछा—"किसी आर्य्य-डाक्टर के पास मुझे ले चलो तो फोड़ा दिखलाऊंगा।" एक अधिकारी ने किसी मुसलमान डाक्टर का नाम ले कर कहा कि उसे बुला कर दिखाएंगे। पंडित जी ने फिर पूछा कि क्या कोई आर्य्य डाक्टर नहीं हैं। लाला कर्त्ताराम ने कहा—"डाक्टर तो कोई आर्य्य-समाज का सभासद् नहीं। इलाज में आर्य्य अनार्य्यपना क्या घुसा है।" आर्य-पथिक की आंखें लाल हो गई

और बोले—"खाक आर्य्य-समाज है! एक डाक्टर को भी आर्य्य नहीं बना सकते।" मैंने हंस कर कहा कि जिस समाज का कोई डाक्टर सभासद् न हो तो क्या उसे आर्य-समाज ही न समझा जाय। आर्य-पथिक ने कुछ गम्भीर हो कर उत्तर दिया—"जिस आर्य-समाज ने डाक्टरों, स्कूल के अ ायपकों और विद्यार्थियों को आर्य नहीं बनाया उस ने क्या खाक काम किया, जड़ को सींचने से ही वृक्ष हरा होता है।" इस उत्तर ने मेरा अन्तःकरण तक लेखराम के पैरों में झुका दिया था।

इस एक मास के कर्णाल निवास के समय की कुछ घटनाएं लाला कर्त्तारास जी ने लिखी हैं जिनका संक्षिप्त वृत्त न्त यहां देना शिक्षाप्रद होगा—"एक दिन एक पादरी साहब पं० जी को मिलने के लिए आर्य मन्दिर में आए। मेरे सामने उन्होंने वैदिक-धर्म के विषय में कुछ प्रश्न किए जिनका उत्तर पंडित लेखराम जी ने बड़े नम्र, मधुर शब्दों में दिया। इसके पश्चात् पं० जी ने क्रिश्चियन मत के विषय में कुछ बातें पूछी जो पादरी साहेब के बतलाने पर नोट करलीं। पादरी साहेब ने विदा होते समय पण्डित जी की योग्यता और शिष्टाचार की बहुत प्रशंसा की।

"इन्हीं दिनों कर्णाल पोस्ट आफिस के महाशय गोपाल सहाय जी के पुत्र उत्पन्न हुआ। ज्योतिषी ने व्यवस्था दी कि लड़का माता, पिता, भाइयों को मार कर रहेगा। माता, पिता ने उसके लिये दूसरे माता पिता ढूंढ़ने चाहे परन्तु ऐसी उत्तम ख्याति वाले बालक को अङ्गीकार कौन करता। पंडित लेखराम को जब पता लगा तो उन्होंने समझा कर महाशय गोपाल सहाय को ऐसी अनुचित कार्यवाही से रोका। परिणाम

यह हुआ कि न केवल सारा परिवार ही जीवित है प्रत्युत उस बालक के दो भाई और हो चुके हैं और पिता की वेतन वृद्धि होती रही।

"पण्डित जी सन्ध्या वन्धन में बड़े पक्के थे। नित्य शारीरिक व्यायाम भी करते थे। निकम्मे, खराब पके हुए भोजन से उन्हें घृणा थी। भोजन छादन में सावधान रहते। एक बार मैंने कहा—"महाराज! आपको भोजन विषय में कुछ नहीं कहना चाहिये। यह आपकी शान के बरखिलाफ है।" बड़ी सख्ती से जवाब दिया—"हम लोग जो दिन रात बाहर घूमते और दिमागी काम करते हैं अगर भोजन छादन में बेपरवाई करें तो काम कैसे होगा। जो उपदेशक इस विषय में सचेत न रहेंगे वे या तो शीघ्र मर जायेंगे वा काम से थक कर बैठ जायेंगे।

"प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में उठते थे। शौच के लिये बाहर जङ्गल में जाते थे। समय व्यर्थ नहीं खोते थे। कभी खाली बैठे नहीं देखे गये। रात के ठीक दस बजे सो जाते थे। चार पांच घंटे बराबर उपदेश देना उनके लिए साधारण बात थी। ऐसा निडर, धर्मात्मा, सदाचारी उपदेशक मैंने और नहीं देखा।" कर्णाल से शायद मई १८९४ के मध्य भाग में आर्य्य पथिक लौट आये और फिर जालन्धर में बैठ कर ऋषि-जीवन सम्बन्धी काम करते रहे। इस अन्तर में उन्होंने स्थानीय प्रचार बन्द नहीं किया और आस पास भी धर्म प्रचार के लिये जाते रहे। ५ जुलाई को उनका व्याख्यान जालन्धर आर्य मन्दिर में होना छपा हुआ है।

६ जुलाई १८९४ को पंडित लेखराम जी मेरे साथ क्वेटा आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होने के लिये चले।

रास्ते में मुलतान में एक व्याख्यान देकर क्वेटे पहुंचे। वार्षिकोत्सव से पहले "पुनर्जन्म" विषय पर उनका बड़ा सार-गर्भित और आन्दोलन पूर्ण व्याख्यान हुआ था। मैं तो वार्षिकोत्सव के पश्चात् १०००) से अधिक धन वेद-प्रचार निधि के लिये लेकर लौट आया परन्तु पंडित लेखराम जी क्वेटे में ही रह गये। वहां उनके १३ व्याख्यान हुए। वहां से हिरक, दाजान, मच्छ, बोस्तान, खोस्ट, शाहरिग में, कहीं दो कहीं तीन व्याख्यान देते हुए सीबी में पहुंचे। १ अगस्त को यहां बड़ा प्रवल व्याख्यान हुआ और २ अगस्त को फिर सीबी निवासियों को सच्चे धर्म का सन्देश सुनाया गया। ५ अगस्त को पांच छः सौ की जन उपस्थिति में "दीन महम्मद" और "महम्मद मुस्तफा" को शुद्ध करके फिर से वैदिक-धर्म में प्रविष्ट कराया। ८ अगस्त को सक्खर में पहला व्याख्यान हुआ, और फिर तीन और व्यख्यान देकर आर्य-पथिक ने सं० १८९४ ई० के आरम्भ में ही, जब कि उनको ऋषि दयानन्द के जीवन चरित्र को शीघ्र छपवा डालने की आशा बंध गई थी, भारतवर्ष का सविस्तर इतिहास निकालने से पहले एक मासिक पत्र निकालने का विचार किया था। उसका नामकरण संस्कार "विद्या वर्तक" किया था और उद्देश्य यह था कि उसके द्वारा वैदिक-धर्म के प्रचार तथा आर्य जाति की सेवा के सब काम किये जावें। अगस्त १८९४ में पहले अङ्क की विषय सूची इस प्रकार तय्यार की थी—

(१) कितने आर्य-समाज स्थापित हुए, (२) कितने मुसलमान वा ईसाई शुद्ध हुए, (३) कितनी विधवाओं के विवाह हुए, (४) विद्या सम्बन्धी लेख, (५) नये विद्या सम्बन्धी निरूपण, (६) वेद सम्बन्धी शंकाओं का समाधान, (७) ऋषियों के

जीवन चरित्र।

पंडित लेखराम की इस शुभ इच्छा की पूर्ति के लिये आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने उनकी मृत्यु के डेढ़ वर्ष पश्चात् "आर्य मुसाफिर" नामक मासिक पत्र प्रकाशित करना आरम्भ किया था जो अब तक गिरता पड़ता चल रहा है। यदि इस पत्र को समयानुसार उर्दू भाषा में तत्वान्वेषण का साधन बनाया जावे तभी आर्य समाज को एक जागृत शक्ति कहा जा सकेगा।

सितम्बर, १८६४ का एक और नोट मुझे मिला है जिससे पण्डित लेखराम के हृदय के भाव विस्पष्टता से प्रतीत होते हैं—

"समग्र भारतवर्ष को आर्य-धर्म में लाने के निम्न साधन हैं। यदि इनमें हम ईश्वर की कृपा से, कृत-कार्य हों तो अवश्य सब लोग सद्धर्म में आ जावें:—

प्रथम—विधवा विवाह वा और कोई साधन जिससे भविष्य में स्त्रियां मुसलमानी वा ईसाई न हों।

द्वितीय—शुद्धि फण्ड जिससे सब मतों के अनुयायी वैदिक धर्म में आ सकें।

तृतीय—वेद प्रचार निधि स्थापित करना अर्थात् उपदेशक तय्यार करना।

चतुर्थ—बचपन का विवाह रोकना।

पञ्चम—पुस्तक प्रचार प्रत्येक भाषा में और साईंस की वह बातें जो वेद-धर्म के विरुद्ध हों, उन पर विचार करना।

षष्ठ—साधु कम हों और उपदेशक बन कर वर्तमान साधु धर्म का कार्य करें।

सप्तम—दान की व्यवस्था ठीक करना।"

सितम्बर १८९४ के मध्य में हम पण्डित लेखराम को श्री गोविन्दपुर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित पाते हैं; और इन्हीं दिनों प्रचारक में "दरियाई मजहब" पर आर्य्य-पथिक का एक विस्तृत नोट देखते हैं।

ऐसा मालूम होता है कि गोविन्दपुर से निवृत्त होकर पंडित लेखराम कुछ दिनों जालन्धर में जीवन-चरित्र का काम करते रहे और फिर २९ और ३० अक्टूबर १८९४ को गुरुदासपुर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए। दोनों दिन "पुनर्जन्म" और "सचाई का मजबूत चट्टान" विषयों पर ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े गम्भीर और जन-प्रिय व्याख्यान देकर महम्मदी प्रश्न कर्त्ताओं की शङ्काओं का भी समाधान किया। गुरुदासपुर से लौटकर ही, अपनी धर्म-पत्नी को घर पहुंचा, पंडित लेखराम कोहाट पहुंचे जहां उन्होंने ५ नवम्बर से ११ नवम्बर, सं० १८९४ तक बराबर ६ व्याख्यान दिए। इन्हीं दिनों एक आर्य भाई के यहां मौत हो जाने पर आर्य-पथिक ने मृतकसंस्कार वैदिक रीत्यानुसार कराया।

कोहाट में पंडित लेखराम के व्याख्यानों की वैसी ही धूम मच गई जैसी अन्य स्थानों में सुनने में आती थी। यहां बन्नू आर्य-समाजों की ओर से तारों पर तारें आती रहीं क्योंकि एक मास से बन्नू निवासी आर्य-पथिक के व्याख्यानों के प्यासे बैठे थे। अन्त को १२ नवम्बर के दिन कोहाट से तार-समाचार पहुँचा कि पंडित लेखराम जी टाङ्गा में बन्नू को चल दिए हैं। आर्य भाई नगर निवासियों समेत टाङ्गा के स्थान में पहुंच गए और चरित्र नायक का स्वागत कर भजन कीर्तन करते हुए उन्हें नौ बजे रात के आर्य-मन्दिर में पहुंचाया।

दूसरे दिन से ही व्याख्यानों का सिलसिला शुरू हो गया।

ईश्वर की हस्ती, मुक्ति-पथ, धर्म्म, सचाई का चट्टान और आर्य-जीवन (विषयों) पर बड़े सार-गर्भित तथा दिलों को हिलाने वाले व्याख्यान हुए। एक दिन प्रश्नोत्तर के लिए रक्खा गया जिसमें किसी अन्य मतावलम्बी ने तो कोई प्रश्न न किया, किन्तु सनातन-धर्म सभा के मन्त्री का पत्र आदित्यवार को शास्त्रार्थ के लिए नियत करने के निमित्त आया। तदानुसार आदित्यवार को बड़ी जन उपस्थिति में सनातन-सभा के मन्त्री तथा एक अन्य पण्डित का "क़ाफियातंग" कर दिया। इन्हीं दिनों में से १६ जनवरी का दिन अपने अन्वेषण के अनुराग की तृप्ति के लिए नियत किया और ग्राम ककिमरत् के खण्ड-रात को जाकर देखा। लोगों में प्रसिद्ध है कि भरत की नन्हस ल अर्थात् महारानी कैकेय की राजधानी इसी स्थान में थी। एक पुराना सिक्का देखकर पीछे से उसको २७) रुपयों तक खरीदने की भी आज्ञा मन्त्री आर्य समाज को भेजी, किन्तु जिस मनुष्य के पास वह सिक्का था, वह उस समय मर चुका था।

२० नवम्बर को पण्डित लेखराम का अन्तिम व्याख्यान था विषय "आर्य-जीवन" था। इस व्याख्यान में आर्य-जीवन का चित्र खींचते हुए मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र, हकीकतराय, पूर्ण भक्तादि के दृष्टान्तों को श्रोतागण के आगे ऐसी योग्यता से रक्खा कि मृत प्राणियों में भी जीवन पड़ गया और पत्थर दिलों को भी मोम बना आठ आठ आंसू रुलाया।

२१ नवम्बर को वन्नू से चलकर डेराइस्माइलखां के रास्ते लाहौर आर्य समाज वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होने के लिए प्रस्थान किया। मालूम होता है कि २२ नवम्बर की रात को दरियाखां रेलवे स्टेशन से लाला मूसा के लिए चल दिए जहां २३ नवम्बर के प्रातःकाल पहुंच गए। लाला मूसा में कुछ देर

तक ठहरना पड़ता है क्योंकि रावलपिण्डी से डाक यहां १२ बजे के पश्चात् पहुंचती है।

पण्डित लेखराम अपना समय व्यर्थ गंवाने वाले न थे इस लिए स्टेशन के किसी बाबू से समाचार-पत्र मांगे। जो पत्र बाबू ने दिए उन्हीं में ७ नवम्बर का मित्र-विलास मिल गया। उसी समय डायरी में नोट कर लिया—"१० अक्टूबर के मेसेन्जर में लिखा है कि परोपकारिणी-सभा सत्यार्थ-प्रकाश में से वह लेख जो बाबा नानक के बाबत है निकाल देवें। देखना है कि समाज इसको क्या समझती है" (मित्रविलास)—

उत्तर—परोपकारिणी सभा इसको नहीं निकाल सकती। समाज इसको स्वामी जी की तहरीर (लेख) समझता है और जब तक उसकी गलती मालूम न हो बिल्कुल सही समझता है। और गलत मालूम हो जाने पर आर्य-समाज नियम ४ के अनुसार गलती कबूल (भूल स्वीकार) करने को तय्यार है। लेखराम आर्य-मुसाफिर बकलमखुद— मुफस्सिल जवाब दिया जायगा। २३ नवम्बर, १८६४, रेलवस्टेशन लालामूसा।"

धुन यह लगी रहती थी कि आर्य-समाज पर कोई आक्षेप ऐसा न रहे जिसका उचित उत्तर न दिया जाय। इन्हीं दिनों दक्षिण-हैदराबाद में निजाम की पुलिस ने पण्डित गोकलप्रसाद पौराणिक के मुकाबिले में व्याख्यान देने वाले पण्डित बालकृष्ण शास्त्री आर्य्योपदेशक तथा ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी को राज से बाहिर कर दिया था। उसका हाल मित्रविलास में पढ़कर नोट कर लिया कि इसके विषय में आन्दोलन करके आर्य-समाज की रक्षा के लिए लेख लिखेंगे।

२३ नवम्बर की डाक में लाहौर पहुंच कर पण्डित लेख-

राम जी ने नगर कीर्तन की शोभा अवलोकन की और २४ नवम्बर को आर्य समाज वार्षिकोत्सव में, मध्याह्नोत्तर के समय, पौराणिक सभा की ओर से पण्डित गोपीनाथ, गोपाल शास्त्री और एक साधु को लेकर आए थे। पौराणिकों की वक्तृताओं का जिक्र करके सद्धर्म-प्रचारक में लिखा है —"किन्तु जब आर्य मुनि जी ने दोनों (सनातनी) बोलने वालों का परस्पर विरोध, अपनी प्रबल युक्तियों से, दिखलाया और आर्य-पथिक ने वेद प्रमाणों से सनातनियों के प्रमाणों और युक्तियों को खण्ड खण्ड कर दिया तो फिर जो प्रभाव श्रोतागण पर पड़ा उसका अनुमान वही लोग कर सकते हैं जिन्होंने इन दोनों उपदेशकों के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ देखे हैं।"

२५ नवम्बर को अन्तिम व्याख्यान पण्डित लेखराम का था। समय केवल एक घण्टा दिया गया था परन्तु जब आर्य-पथिक आर्य-समाज के नियमों की व्याख्या करने लगे तो फिर श्रोता-गण भला कब हिलने का नाम लेते। अढ़ाई घन्टे तक बराबर श्रोता-गण लिखित चित्रवत् बैठे रहे। यदि वक्ता एक घन्टा और बोलते तब भी श्रोता-गण बैठे रहने को तय्यार थे।

लाहौर से आर्य-पथिक अपने जन्म दाता आर्य-समाज पेशावर में गए और ३ अप्रैल से ५ दिसम्बर, १८६४ तक बराबर व्याख्यान दिए। ६ दिसम्बर को रावलपिंडी उतरे परन्तु व्याख्यान का प्रबन्ध न होने के कारण अपने निवास-स्थान कहूटा को चले गए। इस बार अपने ग्राम में लाभचन्द्र भजनीक को भी साथ ले गए और दो दिनों तक वैदिक-धर्म का खूब प्रचार हुआ। वहां से रास्ते में गूजर खां, चकवालादि स्थानों में वैदिक धर्म का डंका बजाते हुए २५ दिसम्बर, सं० १८६४ को

जालन्धर आर्य-समाज के वार्षिकोत्सव में आकर सम्मिलित हुए।

पण्डित लेखराम चकवाल में थे जब ईसाई अखबार "नूर-अफशां" में किसी का छपवाया हुआ लेख देखा जिसमें लिखा था कि पण्डित लेखराम ने एक बार गुजरात में ईसा के विचित्र जन्म का पता वेदों से दिया था। आर्य्य-पथिक ने वहीं से उस लेख का खण्डन सद्धर्म्म-प्रचारक के लिए भेजा, जो १५ पौष १९५१ के अङ्क में छपा था।

जालन्धर आर्य्य-समाज के इस वार्षिकोत्सव में पण्डित लेखराम का पहला व्याख्यान स्मरणीय है। विषय "धर्म परीक्षा की कसौटी" था जिसे आर्य्य-पथिक ने ऐसा प्रभावशाली बनाया कि सद्धर्म-प्रचारक के सम्वाददाता के शब्दों में—"एक साधू, जो आगरे के राय शालिग्राम का चेला हो चुका था, और राधा स्वामी के जाप में निमग्न था, व्याकुल हुआ। पण्डित लेखराम जी से फिर मिला और अन्त को वैदिक धर्म की शरण में आकर उसने राय शालिग्राम को पोस्टकार्ड भेज दिया कि पण्डित लेखराम का व्याख्यान सुनकर उसे राधा स्वामी मत पर विश्वास नहीं रहा।"

ऋषि जीवन की छपवाई और लाहौर की स्थिति

स्वामी दयानन्द के जीवन चरित्र की पूर्ति के लिए आवश्यक यह था कि पण्डित लेखराम बाहर के आन्दोलन के पश्चात् किसी विशेष स्थान में बैठकर काम करें परन्तु एक ओर पण्डित लेखराम का अपना धार्मिक उत्साह और दूसरी ओर आर्य्य जनता की आवश्यकताएं उनको एक स्थान में बैठने न देती थीं। आर्य्य-प्रतिनिधि-सभा ने कई बार विशेष नियम बना बना कर पण्डित लेखराम को दिए, परन्तु आर्य्य-पथिक

के धार्मिक जोश को ठण्डा करने के लिये कोईभी नियम पर्याप्त न थे। जीवन चरित्र का काम करते हुए उनको बुलाने के लिए यह लिख देना काफी था कि एक आर्य-जातिस्थ पुरुष मुसलमान होनेवाला है वा किसी महम्मदी प्रचारक के साथ शास्त्रार्थ की सम्भावना है; और फिर यदि सभा की ओर से आक्षेप होता तो पण्डित लेखराम का यह उत्तर, कि शास्त्रार्थके दिनों का वेतन काट लो, सभा के अधिकारियों को चुप कराने का अपूर्व साधन था। मेरे पास पण्डित लेखराम को इसीलिए रक्खा गया था कि जमा किए वृत्तान्त को किसी क्रम से ठीक करके छपवाने का प्रबन्ध करूं। परन्तु यह इकट्ठा किया हुआ मसाला समझ में नहीं आ सकता था जब तक पण्डित लेखराम ही उसे नोटों से साहित्य का रूप न देते, और मैं आर्य्य-पथिक को प्रचार के लिए भेजने पर मजबूर था। जब मैंने सभा में रिपोर्ट कर दी कि पड़ताल का कार्य किसी अन्य सज्जन के सुपुर्द हो, तो सर्व पत्रादि राय ठाकुरदत्त जी के पास भेजे गए। परन्तु जब राय साहेब ने भी इन पत्रों को अभी अपूर्ण बतलाया तो फिर यह निश्चय हुआ कि लाहौर में स्थित होकर पण्डित लेखराम ही ऋषि का जीवन वृत्तान्त ठीक करके छपवाना आरम्भ कर दें।

उपरोक्त निश्चय के अनुसार पं० लेखराम जी ने लाला जीवनदास पेन्शनर के मकान में रहने का प्रबन्ध किया और अपनी धर्म-पत्नी को लाहौर लाने के लिये जनवरी, १८९५ के मध्य भाग में घर की ओर चल दिये। मार्ग में गुजरात के आर्यों के निवेदन पर ठहर कर एक भूले भाई को वैदिक धर्म की सचाइयों का उपदेश करके मुसलमान होने से बचाया। १८ जनवरी को लाला मूसा में व्याख्यान देकर १९ जनवरी को

गुजरात में "सद्धर्म की प्राप्ति" विषय पर एक व्याख्यान दिया और फिर घर जाकर अपनी धर्म पत्नी जी को साथ ले सीधे लाहौर में स्थित हुए।

इन्हीं दिनों पण्डित लेखराम जी की प्रेरणा पर जो मैंने वेद भाष्य की रक्षा विषयक लेख प्रचारक में लिखे थे; उनका परिणाम निकल आया। यह पण्डित लेखराम ने ही पता लगाया था कि ऋषि दयानन्द के वेद-भाष्य का आर्य्य भाषा में अनुवाद करते हुए ब्राह्मण कुलोत्पन्न पण्डित अपने सिद्धान्त बीच में घुसेड़कर भाष्यको सन्दिग्ध बना रहे हैं। परोपकारिणी सभा ने यह निश्चय मुद्रित कराया कि "महर्षि दयानन्द कृत पुस्तकों के शोधने के लिये पण्डित लेखराम जी को लिखा जावे कि वह अशुद्धियां छांट कर वैदिक-यन्त्रालय के अधिष्ठाता के पास लिख भेजें।"

लाहौर में स्थित होकर पण्डित लेखराम ने जीवन चरित्र का लेख कातिब (लेखक) के हाथ में देना शुरू तो कर दिया परन्तु फिर भी एक ओर लग कर काम करना उन्हें वहां भी न मिला! ६ फरवरी १८९५ के दिन हम उन्हें अपने देश की आवश्यकता पर मिण्टगुमरी में व्याख्यान देते पाते हैं और फिर १० फरवरी का गुजरांवाला में "हमारी मौजूदा तहकीकात" पर प्रकाश डालते देखते हैं। कारण वही मांस-भक्षण का झगड़ा था। जहां कहीं कालिज दल के आदमी समाज को अपनी ओर खींचने जाते वहीं पण्डित लेखराम को भेजना पड़ता।

परन्तु केवल सभा के अधिकारी ही ऋषि जीवन की तय्यारी में बाधा डालने वाले नहीं समझे जा सकते, स्वयं पण्डित लेखराम का भी इसमें बड़ा मारी हाथ होता था। सन्ट-

गुमरी और गुजरांवाला जाने का हाल मुझे भेजते हुए आर्य-पथिक अपने १४ फरवरी, १८६५ के पत्र में लिखते हैं—"अब भिवानी, स्यालकोट, कराची, होशियारपुर के जलसे समीप आ गये। आपने क्या सलाह की है। आप समेत ८ महाशय जाने वाले हैं। उनमें से ४ स्यालकोट और ४ भिवानी चले जावें। मैं और पण्डित कृपाराम जी दोनों, लाभचन्द्र (भजनीक) समेत, होशियारपुर को भुगत लेंगे। बतलाइये अब क्या आज्ञा है? जिन जिन (महाशय) को जिस स्थान में भेजना है, आप भली प्रकार सोच विचार कर, शीघ्र सबको सूचित कर दीजिये जिससे ठीक समय पर काम हो।"

ऊपर का उद्धृत लेख स्पष्ट सिद्ध करता है कि जिस प्रकार पं० लेखराम पेशावर आर्य-समाज के प्रवन्धकर्त्ता बने हुए थे उससे भी बढ़कर उन्हें दिन-रात आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की चिन्ता रहती थी, परन्तु यश और कीर्ति का लेशमात्र भी लालच उन्हें न था। होशियारपुर न जाकर २३, २४ फरवरी को भिवानी आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए जहां व्याख्यानों के अतिरिक्त धर्म-चर्चा में भी विशेष भाग लिया।

भिवानी से पण्डित लेखराम सीधे करणाल आर्यसमाज के जलसे पर पहुंचे और उसी स्थान में उनके साथ मैं भी शामिल होकर २७ से २६ मार्च तक काम करता रहा। शंका समाधान का तो अधिक बोझ पंडित लेखराम पर रहता ही था, परन्तु करणाल के इस वार्षिकोत्सव पर जो दो व्याख्यान उन्होंने दिये उन्होंने हिन्दुओं के मुर्दा तनों में भी जीवन फूंक दिया। पतितों के उद्धार और आर्य-जाति के भविष्य पर ऐसे बल-वर्धक व्याख्यान मैंने पहले नहीं सुने थे।

इसी वर्ष चिरकाल से सोया हुआ दिल्ली आर्य समाज

जाग उठा था और ३० मार्च, १८६५ से उनके वार्षिकोत्सव का आरम्भ था। इस वार्षिकोत्सव में भी पंडित लेखराम मेरे साथ ही कर्णाल से चल कर सम्मिलित हुए थे। दिल्ली नगर में हमारा पहला नगर कीर्तन था इस लिए दिल्ली वाले हमारी भजन मण्डलियों को भी तमाशे वालों का विज्ञापन ही समझे। तब हमारे उपदेशकों ने भजनों के पश्चात् ऊंचे मूढ़ों पर खड़े होकर व्याख्यान आरम्भ कर दिये। इस नगर प्रचार में पंडित लेखराम ने बड़ा काम किया। जब चाँदनी चौक में छुन्नामल वालों के मकान के नीचे पंडित लेखराम ने अपनी वक्तृता आरम्भ की तो दो हजार से कम की भीड़ भाड़ न थी।

पंडित लेखराम के व्याख्यानों में महम्मदी लोग बहुत आते थे। बाहर से चाहे कुछ भाव लेकर आते परन्तु आर्य पथिक की आस्तिकता पूर्ण युक्तयां सुन कर "सुभानऽल्ला" और "मारकऽल्ला" के ही "नारे बुलन्द" होते और दाढ़ी वाले सिर और गर्दनें चारों ओर हिलती दिखाई देतीं।

अभी लाहौर पहुंच कर जीवन चरित्र का कार्य फिर से आरम्भ किया ही था कि सियालकोट से एक सिक्ख रिसाले के सवारों के डांवाडोल होने के समाचार पहुंचे। पंडित लेखराम उसी समय सियालकोट पहुंचे और बड़े प्रेम से अपने सिक्ख भाइयों को धर्म का महत्व समझाया। तीन दिन तक महम्मदी मत के खण्डन में आर्य पथिक के प्रबल व्याख्यान होते रहे जिसका परिणाम यह हुआ कि सैकड़ों खालसे मुसलमान होने से बच गए।

१३ अप्रैल, १८६५ के प्रातःकाल मेरे साथ पंडित लेखराम जी मालेरकोटला आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए। यहाँ की कुछ मनोरंजक घटनाएं वर्णन करने के योग्य

हैं। (१) मुसलमानी रियासत होने के कारण पंडित लेखराम के पहुंचने की धूम मच गई। मध्याह्नोत्तर का समय धर्म-चर्चा के लिए निश्चित था। एक सभ्य मुसलमान सज्जन, मुंशी अब्दुललतीफ नामी ने पुनर्जन्म पर कुछ प्रश्न किए जिनका उत्तर पंडित कृपाराम देते रहे, परन्तु मुंशी साहब प्रश्नोत्तर के पश्चात् केवल यह कह देते कि उनकी तसल्ली नहीं हुई। जब तीन चार बार ऐसा ही हुआ तो मैंने पंडित कृपाराम जी का आशय उनको समझाना चाहा। इस पर वह बहुत बिगड़े। फिर भी जब दो तीन बार मैं प्रबन्ध के लिए उठा तो मुंशी साहब ने रोक कर कहा—"आप कौन हो जो बार बार प्रबन्ध के लिये उठते हो" मैंने उत्तर दिया कि मैं स्थानिक प्रधान की आज्ञा से प्रबन्ध कर रहा हूं। जब इस पर मुंशी साहब को विश्वास न आया तो प्रधान स्थानीय आर्यसमाज ने मेरे कथन का समर्थन किया, और मैंने कहा कि मैं पञ्जाब आर्य प्रतिनिधि सभा का भी प्रधान हूँ इसलिए प्रबन्ध में दखल दे सकता हूँ! मुंशी साहब इस पर बोले "आपका नाम किसी प्रतिनिधि के ताल्लुक (सम्बन्ध) में, किसी अखबार में, खसूसियत से (विशेषतः) सद्धर्म-प्रचारक में भी, कभी नहीं पढ़ा। आप प्रतिनिधि के हरगिज प्रधान नहीं हैं।" तब तो मुझे कुछ असलियत खटकी और मैंने पूछा—"क्या आप मेरा नाम भी जानते हैं?" मुंशी अब्दुल्लतीफ साहब ने फरमाया—"खूब जानता हूं। आप पंडत (पंडित) लेखराम साहेब हैं।" इसपर श्रोतागण खिलखिला कर हंस पड़े और मुझे पता लगा कि पंजाबी लोकोक्ति ठीक है—

"नामी-शाह खट्ट-खाय, बदनाम चोर मारा जाय।"

पंडित लेखराम के व्याख्यान तो मुन्शी साहब ने सुने ही,

परन्तु मेरे व्याख्यान के पश्चात् मेरे हाथ में ५) इसलिए दिए कि मैं जिस शुभ कार्य में उसे व्यय करना चाहूं कर दूं।

(२) दूसरी मनोरंजक घटना रात को हुई। मैं दस बारह दिनों से दिन रात काम करता आया था, इसलिए एकान्त में जा कर सो गया। एक घंटे के पश्चात् ही दो भाई मेरे पैर दबाने लगे। मैं उठ खड़ा हुआ। क्षमा मांग कर उन भाइयों ने कहा कि अनर्थ होने लगा है, शीघ्र चलिए। मुसलमानी रियासत और हमारे मना करते २ पण्डित लेखराम ने मुसलमानों से मुबाहसा शुरू कर दिया है। मैं भागा हुआ पण्डित लेखराम की ओर चल दिया। वहां क्या देखता हूँ कि चार पांच मुसलमानों के बीच में बैठे पण्डित लेखराम ने एक मुसलमान युवक का हाथ अपने हाथ में लिया हुआ है और दूसरा हाथ उसकी जांघ पर रख कर उसे प्रेम से कुछ समझा रहे हैं, और युवक कह रहा है—"यह हवाला तो पण्डित जी आपने कुरान शरीफ में से निकाल ही दिया। अब तो अपने मौलवी साहब से फिर पूछ कर आऊंगा" परन्तु पण्डित लेखराम ऐसी जल्दी कब जाने देते थे। बोले—"मैं तो मुसाफिर हूं, न जाने फिर मिलना हो या नहीं। मेरा आशय तो सुन लो।" फिर आध घण्टे तक वैदिक-धर्म की श्रेष्ठता बता कर उन सब मुसलमान भाइयों को बड़े प्रेम से विदा किया। जब मुसलमान विदा हो चुके और पण्डित लेखराम को मेरे आने का कारण ज्ञात हुआ, तो स्थानीय आर्य समाजियों से कहने लगे "तुम बड़े बोदे हो। क्या मैं तुम सों के भरोसे पर धर्म का प्रचार कर रहा हूं ? ईश्वर जानता है, तुम से अविश्वासी नास्तिकों से तो निमाजी मुसलमान हजार दर्जे बेहतर हैं।"

(३) फिर जब मैं १४ अप्रैल की रात को शिकरम में बैठने

लगा तो तीसरी मनोरंजक घटना हुई। आर्य पुरुष चाहते थे कि पण्डित लेखराम मेरे साथ ही विदा हो जायं, इसलिए मेरी शिक्रम को ठहरा लिया (क्योंकि उन दिनों मलेरकोटले को रेल नहीं जाती थी) और पण्डित लेखराम को कहा कि मैं उन के लिये ठहरा हुआ हूं। आर्य-पथिक बिना बिस्तरादि लिए आए और पूछा—'क्या आप मुझे जबरदस्ती साथ ले जाना चाहते हैं।" स्थानीय अधिकारियों की दशा का ध्यान करके मैंने कहा—"चलिए तो अच्छा ही है।" पण्डित जी के लब फड़कने लगे—"मैं सब कुछ समझ गया हूं। आप मुझे आज से सभा का नौकर न समझिए। ईश्वर जानता है, ये लोग आर्य नहीं हैं। क्या मैं इन बुजदिलों को खुश करने के लिए मैदान से भाग जाऊं। मैं सराय में डेरा करके यहीं रहूंगा" मैं तो खिलखिला कर हंसा और पण्डित जी को नमस्ते कहकर शिक्रम चलवा दी और मलेरकोटले के आर्यसमाजी लज्जित होकर आर्य-पथिक की सेवा सुश्रूषा में सन्नद्ध हुए।

मलेरकोटले से लौटने के पश्चात् पण्डित लेखराम के रोपड़ आर्य समाज के जलसे में, २७ अप्रैल को, सम्मिलित होने का पता लगता है, जहां उनके दो व्याख्यान हुए थे।

इन्हीं दिनों प्रीतमदेव शर्मा की न्याईं उदासी साधु बालकराम ने भी पंजाब का दौरा शुरू किया था और जिस प्रकार प्रीतमदेव, केशवानन्दादि ने स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज को गालियां देना ही धनसञ्चय करने का साधन समझा था वैसा ही बालकराम ने भी अमल शुरू किया। इसलिए पण्डित लेखराम को इसके मुकाबिले में कई जगह जाना पड़ा था। मास मई, १८६५ के आरम्भ में उदासी बालकराम भेरे में था, इसलिए पण्डित लेखराम ने वहां पहुँच कर बराबर तीन व्या-

ख्यान दिए। यद्यपि शास्त्रार्थ के लिए बालकराम जी तय्यार न हुए तथापि भेरा आर्य्य समाज का वार्षिकोत्सव २४, २५, २६ मई १८९५ के लिए नियत हो गया।

पुत्रोत्पत्ति का आनन्द

पण्डित लेखराम के घर में सन्तानोत्पत्ति की आशा थी, इसलिए वह १५ मई, १८९५ को लाहौर से अपनी धर्मपत्नी को साथ लेकर अपने घर कहूटे में पहुंचे, जहां १८ मई शनिवार के दिन प्रातः ९ और १० बजे के बीच में उनके यहां पुत्र उत्पन्न हुआ। बच्चे का नाम-करण संस्कार वैदिक रीति से करके, २२ मई को आर्य-पथिक ने फिर यात्रा आरम्भ कर दी! ३६ वर्ष की आयु में विवाह करके जब पुत्र उत्पन्न हो तो उसके आनन्द में साधारण पुरुष सब कुछ भूल जाता है, परन्तु यहां तो अपने पत्र द्वारा मन्त्री जी से प्रतिज्ञा कर चुके थे कि गूजरखां और तरक्की में विशेष कार्यों के लिए २३ और २४ मई को ठहरते हुए २५ को भेरा आर्य-समाज के उत्सव में सम्मिलित हो जायेंगे और ऐसा ही किया भी।

भेरा आर्य समाज के इस वार्षिकोत्सव में मैं भी सम्मिलित था। पण्डित लेखराम जी अपने पुरुषार्थ को सफल देखकर गद्‌गद हो रहे थे। साधु बालकराम को भी निमन्त्रण भेजा गया परन्तु वह आकर अपनी अप्रतिष्ठा कब कराता था! यहां आपके एक व्याख्यान का विषय था "आजकल के नौजवान (युवक) और उनकी हिम्मत।" इस व्याख्यान में आर्य-पथिक ने कहा—"जो युवक व्यायाम नहीं करते वे खाकर कुछ पचा नहीं सकते और जब काफी भोजन नहीं खाते तो बल कहां से आवे। देखो हस्पताल के बीमारों की खुराक गवर्मेन्ट की ओर से यह नियत है-- आटा आधसेर, दाल एक पाव, घी

एक छटांक, चावल आध पाव। हमारे युवक हस्पताल के बीमारों से भी बदतर हैं कि दो तीन फुलकियां खाकर उठ खड़े होते हैं।" पण्डित लेखराम जी के व्याख्यान का यह भाग उनके सब साथियों और नगर निवासियों को भी कण्ठ हो गया था। २७ के प्रातः हम सब भेरा से चले और ७॥ बजे लालामूसा में पहुंच कर स्नान संध्यादि सारी जमात ने किया। लगभग ६ वा ७ उपदेशक थे। भोजन बनवाने का काम पण्डित लेखराम ने अपने जिम्मे लिया। जब भाजी आदि के साथ आटे की पूरियां ला कर रक्खी गईं तो आध सेर आटे वाला मामला सब को हंसाता रहा। भोजन के समय आर्य-पथिक सब को टोकते जाते थे परन्तु मेरे साथ उन का साम्मुख्य हो गया। दो पूरियां उन्हें दी जातीं तो दो ही मुझे। इस प्रकार जब सब हार गए और हम दोनों भी सत्रह पूरियां खा चुके तो पंडित जी ने हाथ धो लिए और मैंने दो और लेकर बस की। तब पंडित जी बोले—"लाला जी! मैं तो आप को रईसों में ही शुमार करता था, आप ने तो गजब कर दिया।"

पंडित लेखराम वैसे तो बड़ी टेढ़ी प्रकृति के दिखाई देते थे, परन्तु थे बड़े ही हंसमुख और सरल हृदय; वह नहीं सहन कर सकते थे तो मक्कारी और झूठ को। भोजन के पश्चात् पुत्रोत्पत्ति के लक्ष में पंडित लेखराम से सह-भोज मांगा गया। पंडित जी ने उस समय के सारे भोजन का व्यय अपने पास से देकर सब को प्रसन्न कर दिया।

ऋषिजीवन के काम में रुकावट।

भेरे से लौट कर पंडित लेखराम ने अभी जीवन चरित्र के काम को हाथ ही लगाया था कि फिर उन के लिए मांग

क्वेटे से आई। इधर तो यह हाल और उधर जीवन चरित्र का मसाला पड़ताल कराने के लिए अन्तरङ्ग सभा ने प्रत्येक लेख की तीन प्रतियां तय्यार करने का प्रस्ताव स्वीकार किया। पंडित लेखराम भी ऐसी अवस्था में बड़े तङ्ग आजाने थे। सभा के मन्त्री के नाम जो पत्र १७ मई को उन्होंने कहूटे से लिखा उस में दर्ज था—"आर्य-प्रतिनिधि-सभा के गत दो अधिवेशनों में लाला मुन्शीराम के, विशेष आवश्यकताओं के कारण, न सम्मिलित होने से काम पूर्ण न हुआ। जो रेजोल्यूशन पास हैं मैं उन के साथ सहमत नहीं हूं। तीन कापियां कराने में दो तीन सौ रुपये मुफ्त में फालतू खर्च होंगे... एक कापी का होना तो जरूरी है किन्तु एक से अधिक नहीं, उस से केवल व्यय ही बढ़ेगा। आप जानते हैं कि मैं यात्रा में और विशेषतः उपदेश के लिए यात्रा में जीवन चरित्र का काम बिल्कुल नहीं कर सकता। और यात्रा की असावधानता में पत्रों के गुम हो जाने का भी सन्देह रहता है। अब मैं सब पत्र लाला जीवनदास के मकान पर ताले में बन्द कर आया हूं, साथ नहीं लाया।"

आर्य-पथिक के ऊपर लिखित दृढ़ प्रतिषेध करने पर भी उन्हें क्वेटे की ओर जाने की आज्ञा मिली। तदनुसार वह ८ जून १८९५ को लाहौर से चल कर मन्टगुमरी पहुंचे जहां उन्होंने दो व्याख्यान दिए। १३ जून को सीबी पहुँच कर व्याख्यान दिया और १४ को क्वेटे पहुंच गए। १६ और १८ जून को २ व्याख्यान देने के पश्चात् जुलाई के अन्तिम सप्ताह में आर्य समाज का वार्षिकोत्सव रखवाया।

इन्हीं दिनों मेरठ से पण्डित लेखराम को एक पत्र, जालन्धर से घूमता हुआ, क्वेटे में पहुंचा जिसमें लिखा था कि एक

हिन्दू सभ्य मुसलमान हो चुका है और दूसरा होने वाला है—और पंडित लेखराम से सहायता चाही थी। क्वेटे से बिना आज्ञा मेरठ जाना कठिन था परन्तु पण्डित लेखराम के अन्दर कैसा आत्मा काम करता था उस का पता उनके पत्र से लगता है —"लाला मुन्शीराम जी को तार दी है कि इस का स्वयम् प्रबन्ध करें या जैसी आज्ञा हो लिखें तो उस का पालन करूंगा। आप भी उन से पूछ लें कि क्या बन्दोबस्त किया।"

इधर तो आर्य-समाज क्वेटा का वार्षिकोत्सव नियत कराया और उस से पहले धर्म-प्रचार का सिलसिला जमाया और उधर घरसे बड़ा शोक जनक समाचार मिला। जब पंडित लेखराम घर पर छुट्टी लेकर गए थे उन्हीं दिनों उन का भाई, तोताराम, बीमारी के बिस्तरे से उठा था, परन्तु निर्बल अधिक था। क्वेटे में चचा का एक पत्र पहुंचा कि १२ जून को भाई का देहान्त हो गया। इस पर एक जुलाई को जो पत्र, क्वेटे से, पं० लेखराम ने सभा के मन्त्री जी को लिखा वह उनके मानसिक भावों को बड़ी उत्तमता से प्रकट करता है —"मेरा छोटा भाई तोताराम १२ जून को मर गया परन्तु घर वालों ने मुझे कुछ समय तक सूचित न किया। कल पेशावर से मेरे चचा का पत्र आया जिस से हाल मालूम हुआ। हैरान हूं कि क्या करूं। इधर समाज का काम उधर गृह की आपत्ति, हैरानी पर हैरानी है। यदि यहां से काम छोड़कर चला जाता हूं तो अपने समाज को हानि पहुंचती है और वहां भी बहुत सा हर्ज है। लाचार मैंने आज ही घर पत्र लिखा है कि यदि वे मुझे आज्ञा दें तो जुलाई के अन्त तक क्वेटे रहूं, नहीं तो पत्र आने पर आप को सूचना दूंगा।"

मालूम होताहै कि घर वालों ने, पंडित लेखराम का अपनी धार्मिक संस्था से असीम प्रेम देख कर, फिर उन्हें तङ्ग नहीं किया क्योंकि क्वेटे में दो और व्याख्यान देकर हम उन्हें बलोचिस्तान का दौरा करते पाते हैं। २ जुलाई १८९५ को क्वेटे से चलकर बोलान, दोजान, कोलपुर, हिरक, चतरजई, पनीरबन्द आदि में प्रचार, और वेद प्रचारनिधि के लिए धन एकत्र, करते क्वेटे में लौट आए। फिर क्वेटे आर्य-समाज के वार्षिकोत्सव से पहले दो व्याख्यान देकर नगर-निवासियों को तय्यार किया और वार्षिकोत्सव में दो व्याख्यान देकर लौट पड़े।

परन्तु क्या पण्डित लेखराम भाई के मरने से १ महीना १० दिनों के पश्चात् घर लौटे? दीनानगर से तार आया था कि मुसलमानों के साथ शास्त्रार्थ बन गया है, तब आर्य-पथिक घर कैसे जाते? ३० जुलाई को क्वेटे से चलकर ३१ जुलाई को जंक्शन स्टेशन पर प्रातः १० बजे "ईश्वर प्राप्ति" विषय पर व्याख्यान दिया और फिर सीधे चलकर प्रथम अगस्त की रात को दीना नगर रेलवे स्टेशन पर पहुंच गए। यहां मौलवी अकबर अली और मौलवी चिरागुद्दीन, महम्मदी मत के प्रचारक, पहले से जमे हुए थे परन्तु शास्त्रार्थ के लिए सामने न आए। तब २ अगस्त से आरम्भ करके मौलवियों के मुकाबिले में जबरदस्त व्याख्यान दिए, और जनता के आग्रह पर फिर दिन तीन और ठहर कर "वैदिक-धर्म की श्रेष्ठता" "सन्ध्या की आवश्यकता" और "सचाई का मजबूत चट्टान" विषयों पर बड़े सार-गर्भित व्याख्यान दिए। इनका प्रभाव उस समय के स्थानिक मन्त्रीजी इस प्रकार वर्णन करते हैं—"किसी वार्षिकोत्सव में इतनी जनसंख्या उपस्थित नहीं हुई और पं०

लेखराम जी के व्याख्यानों से लोगों के हृदयों में जो सहानुभूति आर्य्य समाज के साथ उत्पन्न हुई है, उसका भी पहला ही अवसर है......पं० जी के व्याख्यानों के पश्चात् यहां सन्ध्या पुस्तकों की बड़ी मांग हो रही है। जहां तक मेरा खयाल है कोई भी आर्य्य समाज का मेम्बर और धर्मात्मा हिन्दू न होगा जो अब भी दो घन्टे व्यय करके दो काल सन्ध्योपासना न करेगा।"

८ अगस्त को अमृतसर पहुंच कर आर्य्य पथिक ने "धर्म के मज़बूत चट्टान" विषय पर व्याख्यान दिया और ९ अगस्त को 'सत्य के श्रोत" विषय पर। यहां पर ही मुरादाबाद की तार के साथ प्रधान आर्य प्रतिनिधि की भी आज्ञा पहुंची कि मुरादाबाद में जाकर एक भाई को ईसाई मत के फन्दे से बचा लाइये। आर्य-पथिक बिना किसी ननु नच के मुरादाबाद चल दिये। खन्ना (जिला लुधियाना) का श्रीराम सारस्वत ब्राह्मण ईसाई होचुका था जिसको वैदिक धर्मका अनुयायी बनाया और प्रायश्चित्त के पश्चात् नगरकीर्तन करते हुए उसे आर्य समाज मन्दिर मुरादाबाद में लाकर ५०० पुरुषों की उपस्थिति में शुद्ध किया, और सब भाइयों ने श्रीराम के साथ खान-पान का व्यवहार आरम्भ कर दिया। उन दिनों सनातन धर्म सभा में आज्ञाराम सागर लोगों को आर्य समाज के विरुद्ध भड़का रहा था परन्तु ११ से १५ अगस्त तक पांच प्रबल व्याख्यान देकर आर्य पथिक ने हिन्दू मात्र को अपने साथ कर लिया और फिर अम्बाले का तार आने पर वहां को चल दिए। यहां पर ईसाईयों ने कुछ शोर मचाया हुआ था जिनके मुकाबिले में पण्डित लेखराम जी के व्याख्यान बड़े प्रभावशाली हुए और सर्वसाधारण को ईसाई मत की निर्बलताओं का परिज्ञान हुआ।

अम्बाला छावनी में जिस काम के लिये आये थे उसे करके २३ अगस्त को शिमला आर्य्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए। शिमला में पण्डित लेखराम के तीन व्याख्यान हुए। जिनमें से अन्तिम व्याख्यान टाउन हाल (Town Hall) में आर्य समाज के नियमों पर हुआ। इस व्याख्यान से प्रभावित होकर बहुत से नये सज्जन आर्य समाज के सभासद् तथा सहायक बने।

शिमले से लौटते हुए पं० लेखराम को वर्षा में भी भीगते आना पड़ा और अम्बाला में भी बादल न खुले। वहां अभी कपड़े सुखाने का बन्दोबस्त करने ही लगे थे और एक व्याख्यान भी दे चुके थे कि मेरा तार पहुंचा और आर्य-पथिक सीधे जालन्धर पहुंच गये। तीसरे पहर रेल से उतरते ही मेरे पास आये। मैंने उनको कष्ट देने का कारण बतलाया। धर्मशाला पर्वत के आर्य समाज का वार्षिकोत्सव था और उसी समय कालिज पार्टी ने भी उत्सव मनाना निश्चित किया। जहां उधर से बड़े बड़े प्रसिद्ध उपदेशक, लीडर और राय साहबान जाने वाले थे वहां हमारी ओर से लामचन्द्र भजनीक को लेकर अकेले पं० कृपाराम जी पहुंचे हुए थे। इस स्थान में पण्डित लेखराम को भेजने का विचार था २६ अगस्त को पण्डित लेखराम मेरे पास पहुंचे और धर्मशाला में ३१ अगस्त को नगर कीर्तन था; यदि दूसरे दिन प्रातःकाल ही चल देते तो धर्मशाला आर्य समाज के सभासदों के डांवाडोल हृदयों को शान्ति मिल सकती थी।

मेरी सारी कहानी सुनकर पण्डित लेखराम बोले 'यह देखिए! लगातार सफर में सारे कपड़े मैले हो गये, कहीं धुलाने का समय नहीं मिला। फिर शिमले से आते हुये उन मैले

कपड़ों में से भी एक सूखा नहीं बचा। मुझे परसों से ज्वर आता है और जुकाम साथ है। बतलाइये! मैं जाने की अवस्था में हूं?" मेरी आखों से अश्रुधारा बहने लगीं और मैंने कहा—'पं० जी! आप अब आराम कीजिये, धर्मशाला का विचार छोड़ दीजिये। वहां का भुगतान हो जायगा।" इतना कहकर मैंने पण्डित जी को उनके निश्चित कमरे में उतारा और कपड़े सुखाने के लिये अङ्गीठी जलवादी, क्योंकि उन दिनों व्यापक झड़ी लगी हुई थी। पं० लेखराम को भोजन कराके मैं अपने काम में लग गया और फिर उस रात उन्हें न मिला।

दूसरे दिन प्रातः मुकद्दमों का प्रबन्ध करके मैं जाने की तय्यारी करने लगा था कि पं० लेखराम कपड़ों का बेग बाहर रख कर मेरे बरामदे में पहुंचे और मुझे अन्दर से बुलवाया। जब मैं बाहर पहुंचा तो क्या देखता हूं कि पाजामा, कोट पहिने पगड़ी का शमला छोड़े कमर की पेटी हाथ में लिए आर्य-पथिक यात्रा को तय्यार खड़े हैं। मुझे देखते ही बोले—"लाला जी! २०) रुपये मार्ग व्यय के लिए मंगा दीजिये और अपने दो नये कुर्ते भी। ऊपरी सफाई की मुझे परवा नहीं लेकिन शरीर से सटा हुआ तो शुद्ध वस्त्र ही होना चाहिए।"

मैं आर्य-पथिक की ओर आश्चर्य से देखने लगा और पूछा "क्या घर से कोई तार आया है।" उत्तर मिला—"घर की मुझे कब परवा है। वहीं धर्मशाला जाता हूं। क्या किया जाय। जाना ही पड़ेगा।" मैंने बतलाया कि मध्याहोत्तर की रेल में मैं चला जाऊंगा वह कष्ट न उठावें। पण्डित लेखराम, प्रसिद्ध कटु भाषी पण्डित लेखराम, प्रेम से सनी हुई वाणी में बोले—"लाला जी! आपका यहां से हिलना बड़ा हानिकारक होगा। आपके ही बल से तो हम सब काम

करते हैं। यदि ऐसी छोटी बातों के लिये आपको कष्ट दें तो हम किस मर्ज की दवा हैं। लीजिये! जल्दी रुपया मंगाइये, रेल का समय समीप आ रहा है।"

इस दृश्यको स्मरण करके अब भी मेरी आंखों में आंसू भर आये हैं। आज आर्य समाज की अवस्था पुकार २ कर चिल्ला रही है—लेखराम! हा! धर्म-वीर, कर्तव्य-परायण लेखराम !!"

रुपये अन्दर से आए, पेटी को बांसलो में डाले गये और आर्य पथिक घोड़ा-गाड़ी की भी प्रतीक्षा न करके रेलवे स्टेशन की ओर चल दिये।

धर्मशाला में अकेले लेखराम ने सचमुच सवा लाख का काम किया। सनातनी ब्रह्मानन्द भारती ने नियोग की आड़ लेकर आर्य समाज और उसके प्रवर्त्तक को बहुत कुछ कोसा था। उसके मुकाबिले में महात्मा हंसराज जी ने पहले से व्याख्यान दिये थे और नवीन वेदान्त मत का खण्डन भी किया था परन्तु भारती का प्रभाव न मिटा। तब पण्डित लेखराम ने भारती जी को शास्त्रार्थ का घोषणा-पत्र भेजा। शास्त्रार्थ से तो वह बच गया परन्तु पंडित लेखराम ने, विज्ञापन देकर, नवीन वेदान्त मत खण्डन और वेदोक्त नियोग के मण्डन विषय पर २ सितम्बर की रात को बड़ा शक्तिशाली व्याख्यान दिया। इस व्याख्यान में स्वामी ब्रह्मानन्द भारती और महात्मा हंसराज जी के अतिरिक्त धर्मशाला में उपस्थित सब सज्जन विद्यमान देखे गये। पण्डित लेखराम में एक बड़ा गुण था कि वह विरोधी की वक्तृता को स्वयं सुन आते थे। इसलिए उनके व्याख्यान टाले नहीं जा सकते थे। इस व्याख्यान ने भारती की सारी लीला को समाप्त कर दिया।

और जो कल्चर्ड महाशय पण्डित लेखराम को लट्ठबाज और पेशावरी गुण्डा कह और लिखकर आर्य-पथिक से घृणा का भाव प्रकट किया करते थे उन्होंने भी इस अपूर्व वक्तृता पर समय समय पर हर्ष प्रकट करके अपने विरोधी विचारों का प्रायश्चित्त किया।

धर्मशाला से लौटते हुए पंडित लेखराम ने पठानकोट आर्य समाज मन्दिर में "ईसाई मत खण्डन" पर एक व्याख्यान दिया, जिसकी वहां आवश्यकता बतलाई जाती थी और वहाँ से "वेद-प्रचार निधि" के लिये धन भी एकत्र कर लाये।

इसके पश्चात् भी कुछ थोड़ा ही काम ऋषि-जीवन सम्बन्धी कर पाये होंगे क्योंकि हम उन्हें गुजरातादि आर्यसमाजों में भ्रमण करते हुए देखते हैं। फिर मन्टगुमरी में प्रचार करके अक्टूबर मास में ऐबटाबाद में प्रचार करने के अतिरिक्त रावलपिण्डी और अमृतसर आर्य समाजों के जलसों में उनका सम्मिलित होना पाया जाता है।

अमृतसर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव से निवृत्त होकर पंडित लेखराम ने लाहौर में तीन व्याख्यान दिये, जिनमें "ब्राह्मसमाज के इतिहास" पर दृष्टि डालते हुए जो व्याख्यान हुआ वह बड़ा ही आन्दोलन पूर्ण था। लाहौर से चल कर ३ नवम्बर को मुलतान पहुंचे जहां ५ नवम्बर तक तीन व्याख्यान दिये। ६ नवम्बर को आराम करके ७ को डेरा गाजीखां पहुंचे जहां उन्होंने उसी सायंकाल के समय "धर्म की आवश्यकता" पर व्याख्यान दिया। फिर १० नवम्बर तक तीन और व्याख्यान देकर ११ नवम्बर को मुजफ्फरगढ़ पहुंचे। वहां दो व्याख्यान दे और करोड़ आर्य-समाज में प्रचार करके लाहौर लौट गये।

जीवन चरित्र का थोड़ा ही काम कर सके थे कि लाहौर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में भाग लेना पड़ा। नगरकीर्तन के समय नगर-प्रचार के अतिरिक्त १ दिसम्बर १८९५ को वार्षिकोत्सव का अन्तिम व्याख्यान दिया जिसमें सबसे अधिक जनसंख्या थी। व्याख्यान पर श्रोता गण इतने मोहित हुए कि समय समाप्त होने के एक घण्टा पीछे तक बराबर जम कर बैठे रहे।

इन्हीं दिनों आर्य पथिक का सबसे बड़ा ग्रन्थ "पुनर्जन्म" विषय पर छप कर तय्यार हो गया और आर्य जनता मात्र ने उसका बड़े आदर से सत्कार किया।

लाहौर के उत्सव के पश्चात् फिर जीवन-चरित्र का कार्य आरम्भ किया था कि आर्य्य-पथिक के लिए पुनः मांग आने लगी। ८ दिसम्बर को उनका व्याख्यान लुधियाना नगर में हुआ। १० को माछीवाड़ा ग्राम में धर्म-प्रचार करके १२ दिसम्बर, १८९५ को रोपड़ पहुंचे जहां १३ तक दो व्याख्यान दिये। मूर्त्ति-पूजा विषय पर पौराणिक पण्डितों से यहां शास्त्रार्थ भी हुआ।

कहां रोपड़ और कहां शरकपुर! दोनों रेलवे लाइन से दूर—परन्तु हम १५ और १६ दिसम्बर को उन्हें शरकपुर (जिला लाहौर) में व्याख्यान देते देखते हैं।

इस वर्ष का दौरा भी गत वर्षानुसार जालन्धर आर्य-समाज के वार्षिकोत्सव पर ही समाप्त हुआ, और वहां से ही आर्य पथिक ने नये वर्ष का कार्य आरम्भ किया।

जनवरी, १८९६ के आरम्भ में ही पटियाला राज में पहुँच कर पांच व्याख्यान दिये। वहां से लाहौर लौटकर जीवन चरित्र में कुछ त्रुटि देख ११ जनवरी, १८९६ को फिर मुलतान में ऋषि

जीवन सम्बन्धी आन्दोलन के लिये गये। १६ जनवरी से ३ फरवरी तक वहां रहे, इस अन्तर में वहां सात व्याख्यान भी दिये। ४ फरवरी को लाहौर लौट कर फिर जीवन चरित्र का काम होने लगा, परन्तु स्थानीय प्रचार भी साथ साथ चलता रहा। ६ फरवरी को मिआं मीर में और १० तथा ११ फरवरी को अमृतसर में व्याख्यान दिये। वहां से चल कर १४ से २४ फरवरी तक डेरा-इस्माइलखां आर्य-समाज में रहे जहां उदासी साधु बालकराम ने शोर मचा रक्खा था। यहां बड़ी धूम के व्याख्यान हुए। लौटते हुए २५, २६ फ़रवरी को मुजफ्फर-गढ़ में व्याख्यान दिये और २७ फरवरी के दिन डेरा गाजी खां पहुंच गये। वहां एक पादरी से शास्त्रार्थ करके नगर कीर्तन कराया जिसमें स्वयं थोड़ी-थोड़ी दूरी पर व्याख्यान देते रहे और २८ फरवरी को फिर ७०० की जनोपस्थिति में आर्य्य-समाज के नियमों पर व्याख्यान दिया जिसकी समाप्ति पर १३ नये सभासद् बने।

इसके पश्चात् लाहौर लौटकर जीवन चरित्र की छपाई के साथ-साथ स्थानीय प्रचार भी करते रहे। फिर १८ मार्च को कर्णाल पहुंचे जहां नगर कीर्तन में नगर प्रचार करने के अतिरिक्त दो अत्युत्तम व्याख्यान दिए वहां से १५ मार्च, १८६६ को चलकर १६ को दिल्ली में "वैदिक-धर्म की श्रेष्ठता" पर व्याख्यान दिया। और वहां से सीधे अजमेर पहुंचकर वहां के आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए। वार्षिकोत्सव की कार्यवाही में तो पं० लेखराम के दो बलयुक्त व्याख्यानहुए ही परन्तु नगर कीर्तन में एक ऐसी घटना हुई जिसे अजमेर आर्य समाजके वृद्ध सभासद् अभी तक नहीं भूले हैं।

आर्य-पथिक भजन मण्डली के साथ झूमते हुए जा रहे

थे, और बीच में कहीं कहीं व्याख्यान भी देते जाते थे। मार्ग में कुछ मुसलमान भाइयों से बातचीत होने लगी। पण्डित लेखराम के उत्तर सुनकर कुछ मुसलमान भड़क उठे। "ख्वाजा चिश्ती" की दर्गाह पास थी, इसलिए आर्यसमाजी डर कर भाग गए अकेल लेखराम न यार न मददगार। परन्तु क्या लेखराम ने अपना धर्म प्रचार का काम बन्द कर दिया ? नहीं। कहीं सुना था कि विधर्मी के धर्म-मन्दिर से ३० कदम की दूरी पर प्रत्येक धर्म-प्रचारक को अपने मत के समर्थन करने का अधिकार है। आप दर्गाह के द्वार पर पहुँचे। मुसलमान आश्चर्य से इनकी क्रिया को देख रहे थे। लेखराम ने दर्गाह के द्वार से उच्च स्वर से कदम गिनने आरम्भ किए और तीसवें कदम (पग) पर पहुंच, एक छोटे पुल पर खड़े होकर धर्म-प्रचार शुरू कर दिया। "कब्रप्रस्ती" और "मर्दुमपरस्ती" इत्यादि का जबरदस्त खण्डन होने लगा। मुल्लाओं ने बहुतेरा भड़काया परन्तु मुसलमान सर्व साधारण जनता ने (जो एक सहस्र की संख्या में एकत्र हो गई थी) वहदानियत (एक ब्रह्मवाद) की एक एक चोट पर वक्ता के साथ सहानुभूति प्रकट की। उस समय तक आर्य-समाजियों को भी होश आ चुका था। चुपके से दो चार देखने गए कि लेखराम पर कैसी बीती, क्या मारा गया वा कहीं भागकर बच गया। किन्तु उनके आश्चार्य की सीमा न रही जब उन्होंने प्रचारक के व्याख्यान का प्रभाव अपनी आंखों से देखा और मुसलमान जन साधारण को वक्ता के वशीभूत पाया।

अजमेर से लौटकर पण्डित लेखराम ने एक सप्ताह ही जीवन चरित्र का काम किया होगा कि मुस्तफाबाद (जिला अम्बाला) के उत्सव के लिये उनकी मांग आई। १०, ११,

१२ अप्रैल, उस उत्सव में सम्मिलित रहे जिसमें साधारण व्याख्यानों के अतिरिक्त दो हिन्दुओं को मुसलमान होने से बचाया। इसके पश्चात् २४ से २६ अप्रैल तक हम पण्डित लेखराम को दीनानगर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित पाते हैं। ७ जून, १८९६ को जालन्धर आर्यसमाज में "आर्यों से जातीय व्यवहार" विषय पर व्याख्यान देना छपा है।

ऐसा मालूम होता है कि इन दिनों विशेष प्रकार से फिर पण्डित लेखराम जालन्धर में स्थित हो गए थे, और अपनी धर्मपत्नी तथा बच्चे सहित (जिसका नाम सुखदेव रक्खा था) महल्ला "कोट कृष्णचन्द्र" में किराए के मकान में निवास करते थे

जालन्धर में गृहस्थ जीवन और आदर्श ब्राह्मण गृह

जालन्धर में ही पंडित लेखराम ने वास्तव में गृहस्थाश्रम का आरम्भ किया, इसी स्थान पर देवी लक्ष्मी जी की गोद हरी हुई और अन्त को इसी भूमि में पंडित लेखराम को अपने इकलौते पुत्र का अन्त्येष्टि संस्कार करना पड़ा, इसलिये उनके गृहस्थ जीवन का पूरा वृत्तान्त इसी स्थान में देना आवश्यक प्रतीत होता है।

पंडित लेखराम जी का मेरे साथ विशेष प्रेम था, इसके बतलाने की आवश्यकता नहीं, फिर भी वह उस समय सारे आर्य जगत् को एक परिवार समझने लग गये थे और इसलिये उनका किसी स्थान विशेष से प्रेम नहीं रह सकता था। परन्तु पंडित लेखराम जी की धर्मपत्नी, श्रीमती लक्ष्मी देवी जी, उस उच्च आदर्श को ग्रहण नहीं कर सकी थीं। उनका मन केवल जालन्धर निवासिनी आर्या स्त्रियों से ही मिला हुआ था। लाहौर में वह जब तक रहीं अपने आप को परदेस में समझती

रहीं और इसलिये वहां से घर चली गई थीं।

जब पुत्र उत्पन्न हो चुका, उसके पश्चात् स्वभावतः उन्हें भरी गोद लेकर उस जालन्धर नगर में लौटने का उत्साह हुआ जहां से वह गोद हरी लेकर गई थीं। इसी अन्तर में पण्डित लेखराम का लाहौर में रखना भी कुछ अनावश्यक ही प्रतीत हुआ क्योंकि जीवन चरित्र की तय्यारी में उनको मुझसे अधिक सहायता मिल सकती थी तब यही ठीक समझा गया कि उन्हें लाहौर से जालन्धर आने की आज्ञा दी जावे।

इन्हीं दिनों पं० लेखराम जी के पिता का देहान्त हो गया, और इसलिये १६ से २८ मई, १८६६ तक की छुट्टी लेकर वह अपने निवास स्थान कहूटा को चले गये और वहां से अपनी धर्म पत्नी और पुत्र को साथ लेकर जालन्धर आ गये।

पंडित लेखराम को मैं एक सच्चा ब्राह्मण मानता हूँ और उनके गृह को आदर्श ब्राह्मण गृह समझता था क्योंकि वह त्याग का जीवन व्यतीत करते थे। चिरकाल तक उन्हें २५) मासिक वेतन ही मिलता रहा और उसी में वह अपना निर्वाह करते रहे। फिर जब उनका विवाह हो गया तो सभा ने स्वयं उनको ३०) मासिक देना आरम्भ कर दिया; आर्य-पथिक ने वेतन वृद्धि के लिए कोई प्रार्थना पत्र नहीं दिया था। फिर जब पण्डित लेखराम के घर पुत्र उत्पन्न हुआ और मुझे मालूम हुआ कि उन्होंने "हिन्दू परस्पर सहायक भंडार" में सम्मिलित होने के अतिरिक्त १७ जून १८६५ से "सन लाइफ इन्श्युरेन्स कम्पनी" में अपने जीवन का बीमा करा लिया है, तब मैंने सभा का ध्यान इस ओर आकर्षित करके उनका वेतन ३५) मासिक करा दिया था। शायद यह समझा जावे कि पण्डित लेखराम को अपनी रची हुई पुस्तकों की बिक्री

से अधिक आमदनी होती होगी, परन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात् उनकी पुस्तकों का सारा हिसाब पड़ताल करने से मुझे ज्ञात हुआ कि जब तक आर्य-पथिक की पुस्तकों का सारा प्रबन्ध सद्धर्म-प्रचारक यन्त्रालय के आधीन (शायद सं० १९५५ में) नहीं हो गया था तब तक उन्हें पुस्तकों से एक कौड़ी का भी लाभ नहीं होता रहा। पण्डित लेखराम के पीछे कइयों ने 'आर्य्य मुसाफिर" नाम धराए, और उसके सहारे सहस्रों रुपये कमाये, परन्तु आर्य-पथिक ने धन जमा करना अपना उद्देश्य रक्खा ही न था और यदि वह अपने जीवन का बीमा न करा जाते तो देवी लक्ष्मी के पास अपने निर्वाह के लिये शायद थोड़े से आभूषणों के अतिरिक्त कुछ भी न बचता। और बीमे का आया हुआ धन क्या देवी लक्ष्मी ने वर्ता? सच्चे ब्राह्मण लेखराम ने अपनी धर्म-पत्नी को भी ब्राह्मणी ही बनाया और उन्होंने बीमा का पूर्ण २०००) रुपया गुरुकुल कोष में जमा कराके सदा के लिए आर्य-पथिक के स्मारक में एक विद्यार्थी पढ़ाने की बुनियाद रख दी। मुझे आशा है कि सच्चे ब्राह्मण-कुल के पवित्र दान से पढ़े हुए ब्रह्मचारी भी त्यागी सच्चे ब्राह्मण ही निकलेंगे।

पण्डित लेखराम प्राचीन ब्राह्मणों की तरह त्याग की मूर्त्ति तो थे, परन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि मध्यकालीन चर्सिया बैराग के वह दास थे। नहीं, प्रत्युत गृहस्थ जीवन का आदर्श भोगने की, उनके कर्मों में सदा, चेष्टा दिखाई देती है। थोड़े से धन से ही पुत्र के पालन और गृहस्थ की रक्षा का बड़ा उत्तम प्रबन्ध किया करते थे। सुखदेव को गोद में लेकर खिलाते देख कोई विचार-शील पुरुष नहीं कह सकता था कि सच्चे प्रेम का उन में अभाव है। इस के अतिरिक्त कुछ अन्य

वैरागी आर्यों की तरह वह अपने परिवार से भी उदासीन न रहते थे परन्तु परिवार के प्रेम में फंस कर अपने सिद्धान्तों से गिर कर आत्म-घाती कभी नहीं बनते थे। इस के प्रमाण में आर्य-पथिक का जालन्धर से २४ जून, १८९६ को अपने चाचा के नाम लिखा हुआ पत्र काफी है। इस पत्र में पण्डित लेखराम लिखते हैं "पिता जी के देहान्त का समाचार घर वालों ने मुझे नहीं भेजा था। आप के पत्र से ही पहले पहल मुझे उस की सूचना मिली। मैं ११ वा १२ दिन घर रह कर लौट आया और लाला साहेब (पिता जी से तात्पर्य) तथा तं ता-राम—दोनों के मृतक शरीरों की भस्म भी साथ लाया जो मार्ग में शास्त्र की आज्ञानुसार झेलम नदी में प्रवाह कर दी। मैं अब यहां चार पांच महीने रहूंगा। एक मकान २) मासिक किराए पर लिया हुआ है। स्वामी जी का जीवन-चरित्र यहां साफ करके, फिर छपवाया जावेगा। जब तक यह न छप जाय तब तक यहां ही रहूंगा ...... घर में (अर्थात् कहूटे में) अब कोई आदमी नहीं है। सय्यदपुर के मकान का तो अब फैसला ही हो गया कहूटे के लोगों से आप परिचित ही हैं; बतलाइए अब मकान कहां बनाऊँ। आप ने तो रावलपिंडी में बना लिया, और आप आयु भर वहीं रहेंगे .. कोई कूल और कोई कहूटे की सलाह देता है। आर्य सामाजिक भाई प्रत्येक अपने २ शहर में सम्मति देते हैं। मैं चाहता था कि यदि ऐसा स्थान होता जहां आप भी समीप होते तो उचित था। मुझे यद्यपि अब सारा जगत् ही कुटुम्ब दिखाई देता है और अपने सम्बन्धियों के साथ भी जन-साधारण से बढ़ कर प्रेम नहीं रहा तथापि रक्त का सम्बन्ध भी कुछ प्रभाव रखता है। आप जो सम्मति उचित समझें अवश्य लिखें .. चिरञ्जीव

सुखदेव के दांत निकल रहे हैं, छः निकल चुके हैं, इसलिए कभी दस्त आजाते हैं—वैसे वह स्वस्थ है, और उस की माता भी स्वस्थ है।" इस सम्बन्ध में पंडित लेखराम की दिनचर्या का समय विभाग, जो उन्होंने अप्रैल १८९६ ई० की समाप्ति पर लिखा था, बड़ा प्रकाश डालता है:—

(१) "चार घड़ी अर्थात् सवा घन्टा रात रहे उठ कर शौच के लिए जङ्गल में जाना फिर दन्त धावन और स्नान तथा सन्ध्या; और अग्नि-होत्र सूर्य के उदय होने पर। अग्नि-होत्र लक्ष्मी जी (आर्य-पथिक की धर्म-पत्नी जी) कर लिया करें और कभी २ मैं स्वयं भी कर लिया करूंगा।

प्रत्येक दिन व्यायाम करना, ठीक ४० डण्ड।

(२) वेद पाठ एक घण्टा; कुरान, तौरेत, इन्जील का स्वाध्याय एक घन्टा वा अन्य मतों सम्बन्धी पुस्तकादि। ग्रन्थ निर्माण का कार्य ११ बजे तक।

(३) ११ बजे से २ बजे तक—भोजन, विश्राम ग्रहस्थ के कार्यादि और प्यारी लक्ष्मी को पढ़ाना।

(४) ३ से ५ बजे तक पुस्तकावलोकन तथा लेख, विशेषतः ऐतिहासिक विद्या सम्बन्धी।

(५) मलत्याग, शौच, सन्ध्या, भ्रमण, व्याख्यान अर्थात् लोगों को सद्धर्म्म का उपदेश देना। अग्नि-होत्र, भोजन घर का प्रबन्ध—६ बजे से ९ बजे तक।

(६) अपने संशोधन के सम्बन्ध में विचार। सोने से पहले मुंह हाथ पांव धोकर कुल्ला करना और परमेश्वर का ध्यान करना। रात के दस बजे सोना; पूरे छः घन्टे सोना, कम बिल्कुल नहीं। एक चारपाई पर न सोना चाहिये; ऋतुगामी होना चाहिए।

(७) मल त्याग के लिए अधिक समय न बैठना चाहिये, इससे बवासीर हो जाती है।

(८) खाना जहां तक हो सके चबा कर खाना; ३२ बार यदि प्रत्येक ग्रास चबाया जावे तो कोई बीमारी नहीं होती। खाने के पश्चात् तत्काल ही लघुशंका के लिये बैठना चाहिये क्योंकि इससे मसाने की बीमारी नहीं होती।

(९) प्रातःकाल उठ कर पहले अनुमान आध पाव के बासी पानी नाक पकड़ कर पीना, जिससे अजीर्ण कभी नहीं होता।

(१०) पाजामे के अन्दर लङ्गोट रखना चाहिए और लङ्गोट समेत नहाना चाहिए। लघुशंका के पश्चात् पानी वा मट्टी से शुद्धि करनी चाहिये, जिससे शरीर अपवित्र न हो। व्यर्थ क्रोध न करना चाहिये, कटु वचन तथा झूठ से अलग रहना और "दीन-ए-इस्लाम" की विषयुक्त शिक्षा के बुरे प्रभाव को दूर करने का प्रयत्न; और इसी प्रकार दूसरे मतों का भी; और वैदिक-धर्म का प्रचार। ईश्वर! मेरी इच्छा को आप पूर्ण करो।"

जालन्धर में गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए भी जहां ऋषि जीवन-चरित्र की तय्यारी का काम जारी था वहां स्थानीय प्रचार के अतिरिक्त बाहर धर्मोपदेश के लिये जाना भी बन्द नहीं हुआ था। २९ से ३१ मई, १८९६ तक रोपड़ आर्य-समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होकर अपने व्याख्यानों से सोये हुये कायर हिन्दुओं को वीर आर्य बनने की प्रेरणा करते रहे। द्वारिकामठ के शंकर स्वामी इसी वर्ष की ग्रीष्म ऋतु में जालन्धर पधारे थे। उनके मुकाबिले में जो बड़े बड़े आर्य विद्वानों के व्याख्यान हुए उनमें से पंडित लेखराम का

व्याख्यान बहुत ही हलचल मचाने वाला था। इन्हीं दिनों पंडित लेखराम ने कर्तारपुर (जिला जालन्धर) में आर्य-धर्म की रक्षा के लिये दो बार जाकर धर्मोपदेश दिये और ऐसी जबरदस्त धार्मिक हलचल मचाई कि वहां एक प्रबल आर्य-समाज स्थापित हो गया।

यह पहले लिखा जा चुका है कि विवाह के दिन से ही पं० लेखराम जी ने अपनी धर्म-पत्नी को पढ़ाना आरम्भ कर दिया था। जिस प्रकार अन्य विषयों में उनके उपदेश क्रियात्मिक होते थे उसी प्रकार स्त्री शिक्षा का प्रचार भी जीवन द्वारा करते थे। जालन्धर में रहते हुए लक्ष्मी देवी जी को स्त्री-समाज के अधिवेशन और अन्य सब धार्मिक उत्सवों में भी, सम्मिलित होने के लिए भेजते रहे। जिस प्रकार स्वयं सच्चे ब्राह्मण बने हुए पुरुष जाति के उद्धार के लिए काम करते थे, उसी प्रकार लक्ष्मी देवी जी को स्त्री जाति की सेवा के लिए तय्यार करना चाहते थे। मुझ से धर्मवीर ने देशान्तर में प्रचार के लिए गोष्ठी करते हुए अपने जीवन का सारा समय विभाग कई बार बतलाया था। इस समय विभाग में प्रायः लक्ष्मी देवी का मुख्य भाग होता था। यदि वानप्रस्थ का विचार आता तो उसमें भी लक्ष्मीदेवी का जिक्र आता। धर्मवीर लेखराम लक्ष्मी-देवी को क्या बनाना चाहते थे वह उस समय विभाग से पता लगता है जो मैं ऊपर उद्धृत कर चुका हूं। लक्ष्मी देवी में विनय और लज्जा का भाव बहुत विचित्र था। जिन दो तीन देवियों से उनका हृदय मिला हुआ था, उन के सिवाय बहुत कम स्त्रियों से भी खुल कर बात करती। पं० लेखराम जी चाहते थे कि उनकी धर्म पत्नी धर्म प्रचार विषयक योजना में उन से सहायता लेकर अपनी बहिनों को वैदिक-धर्म की ओर प्रेरित करें। उन्होंने लक्ष्मीदेवी का हौसला बढ़ाने के लिए मुझसे

साधन पूछे। मैंने सम्मति दी कि श्रीमती लक्ष्मी देवी जी को अपने साथ आर्य समाजों के वार्षिकोत्सवों पर ले जाया करें। पं० लेखराम ने उसी पर अमल करना शुरू कर दिया। अम्बाला और मथुरा आर्य-समाजों के वार्षिकोत्सवों पर देवी को अपने साथ ले गए जहां से उनका पुत्र सुखदेव बीमार हो कर लौटा। मथुरा आर्य समाज का वार्षिकोत्सव १६,१७ अगस्त, १८९६ को था। बीमार पुत्र को वहां से जालन्धर छोड़ कर पण्डित लेखराम शिमला आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए। वहां से जब २६ अगस्त को जालन्धर लौटे तो प्यारे सुखदेव की बीमारी बढ़ी हुई देखी। हम सबने चिकित्सा तथा निदान कराने में कुछ उठा नहीं रक्खा, परन्तु हम सब के देखते २ पं० लेखराम का प्यारा पुत्र २८ अगस्त १८९६ के दिन, सवा वर्ष की आयु में इस भौतिक शरीर को त्याग कर स्वर्ग-लोक का पथगामी बना। उस समय पण्डित लेखराम की सहन शक्ति का मैंने चमत्कार ही देखा था। किसी प्रकार के भी शोक को समीप नहीं आने देते थे।

परन्तु बच्चे की दुखिया माता के हृदय पर बड़ा भारी वज्रपात दिखाई देता था। जिस जालन्धर की भूमि में पुत्र रूपी रत्न प्राप्त किया था उसी भूमि पर उसकी राख करके फिर कोमल हृदय भारत रमणी से कब वहां निवास किया जा सकता था! धर्म-पत्नी को लेकर पं० लेखराम घर पहुँचाने चले गए और २ दिनों के पश्चात् पूर्ववत् ही धर्म-प्रचार में सन्नद्ध हो गए।

साधारण प्रचार का अन्तिम वर्ष

जुलाई के आरम्भ में पसरूर (जिला सियालकोट) से पं० लेखराम के लिए मांग आई। आ० प्र० सभा के एक प्रचारक ने महम्मदी जगत् को हिला दिया था। इस पर तीन

महम्मदी प्रचारक बुलाए गए जिनसे शास्त्रार्थ की छेड़-छाड़ शुरू हुई, तब पण्डित लेखराम के पास तार पहुंचा। १८ जुलाई १८९६ को आर्य-पथिक जालन्धर से चले और १९ को सायं-काल पसरूर में पहुंच गए। उसी समय बड़ा भारी नगर-कीर्तन हुआ। २० जुलाई को पहला व्याख्यान "वैदिक धर्म की श्रेष्ठता" पर हुआ जिसमें ८०० हिन्दुओं के साथ २०० मुसलमान भी उपस्थित थे। व्याख्यान की समाप्ति पर पसरूर में उपस्थित पांच मौलवियों को प्रश्न करने का अवसर दिया गया परन्तु सिवाय एक मौलवी के और कोई न उठा। उसने भी केवल आर्य-पथिक की बातों को दोहरा दिया। दूसरे व्याख्यान का विषय था "सच्चाई का मजबूत चट्टान" मौलवी लोगों ने पत्र-व्यवहार में ही समय समाप्त किया और पण्डित लेखराम दो और व्याख्यान देकर जालन्धर लौट आए।

पसरूर के सम्बन्ध में एक घटना लाला गणेशदास सियालकोटी ने लिखी है जो धर्मवीर लेखराम के निडर आत्मा की साक्षी है। तीसरे दिन पण्डित लेखराम व्याख्यान के लिए अभी खड़े होने की ही तय्यारी कर रहे थे कि एक बड़े प्रसिद्ध म्यूनिसिपल-कमिश्नर आए और महाशय मथुरादास प्रचारक के पास बैठकर कुछ कानाफूसी करने लगे। आर्य-पथिक ने कहा—'घुसपुस क्या करते हो—क्या बात है?" प्रचारक मथुरादास जी ने कहा कि यह महाशय थानेदार साहब का सन्देशा लाए हैं कि यदि बलवा (लड़ाई झगड़ा) हो गया तो पुलिस जिम्मेवार न होगी। आर्य पथिक की आंखें लाल हो गईं और कड़क कर बोले—"क्या हम युद्ध करने आए हैं? हम तो धर्मोपदेश के लिए आए हैं सो जब तक चाहेंगे स्वतन्त्रता से करेंगे। जिसका जी चाहे सुने, जिसका जी न चाहे न सुने। अगर यों ही बलवा हो तो पड़ा हो। हम

देखेंगे कौन बलवा करता है। हम थानेदार साहब वा और किसी साहब की रक्षा की परवाह नहीं करते।"

जब व्याख्यान के लिए खड़े हुए तो देखा कि टाउन पुलिस के कुछ चौकीदार हाथ भर का लम्बा डण्डा लिए खड़े हैं। उनकी ओर देखकर अटक-अटक कर कड़कते हुए बोले— "ओ काली पगड़ी वालो! अगर व्याख्यान सुनना है तो अपनी खुशी से ठहरो नहीं तो तुम्हारी रक्षा की हमें परवाह नहीं है; अभी चले जाओ। मैं देखूंगा कि कौन मुझे मारता है।"

पशावर से निवृत्त होकर पण्डित लेखराम शिमला आर्य-समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होने के लिए चले गए। वहां पहले से मिर्जा गुलाम अहमद के चेले ख्वाजा कमालुद्दीन ने अपने मिशन का काम जारी कर रक्खा था। पंडित लेखराम ख्वाजा साहेब के व्याख्यानों को सुनने जाते रहे और फिर आर्य-मन्दिर में तीन बड़े जबरदस्त व्याख्यान दिए। महम्मदियों की निमाज के मुकाबिले में आर्यों की सन्ध्या की श्रेष्ठता जतलाई और वैदिक धर्म के सौन्दर्य को भला प्रकार प्रकाशित किया। मुसलमान तो पण्डित लेखराम के आक्रमण से तङ्ग आए हुए थे, परन्तु उन दिनों आर्य्य पथिक ने एक नई पुस्तक "हुज्जतुल इस्लाम" का नोटिस दे रक्खा था। मुसलमान सुन चुके थे कि पण्डित लेखराम इस पुस्तक में महम्मदी मत के विरुद्ध अपना सारा जोर लगाएंगे इससे मिर्जा गुलाम अहमद कादियानी, आर्य्य-पथिक की अकाट्य युक्तियों से तङ्ग आकर, जवाब देने की, ताब न रखते हुए उन्हें मौत की धमकी दे चुका था और लिख चुका था कि महम्मदी तलवार से डरो और इसलाम के विरुद्ध लिखना छोड़ दो। इन सब अवस्थाओं के होते हुए जब मिर्जा कादियानी के चेले ने हिन्दुओं के अन्ध विश्वासों को आर्य्य समाज पर मढ़ना शुरू किया तो अपने अन्तिम व्याख्यान

में पण्डित लेखराम ने यह सिद्ध करने के लिए प्रमाण दिए कि इसलाम के पैगम्बरों ने खुदाई का दावा करके कुफ्र फैलाया है। जो प्रमाण आर्य्य पथिक ने उस समय दिये थे वे सब 'हुज्जतुल इसलाम" में पीछे छप गए हैं। सारा सभा-मण्डप मनुष्यों से भरा हुआ था, जिनमें आधे मुसलमान थे। जब पण्डित लेखरामने अन्यों के प्रमाण देते २ एक आयत पढ़ी जिसका अर्थ था—"मैं खुदा के नूर से हूं" और इस पर एक कवि का वचन पढ़ा—जिसका तात्पर्य यह है कि यद्यपि महम्मद ब्रह्म के प्रकाश से जुदा प्रतीत होता है परन्तु वह है वही ब्रह्म। मुसलमानों की जमात में से एक युवक मण्डल से रहा न गया और उनमें से एक युवक बी० ए० ने चीख कर कहा—काफिरों को काटने वाली महम्मदी शमशीर को मत भूल" पण्डित लेखराम एक पल के लिए रुक गए; फिर जिधर से शब्द सुने थे उधर आंखें घुमा कर सिंहनाद गुंजा दिया—"मुझे बुजदिल महम्मदी तलवार की धमकी देता है। मैंने अधर्मी निर्बल मनुष्यों से डरना नहीं सीखा। जानते नहीं हो मैं जान हथेली पर लिये फिरता हूं।

सारे हाल में सन्नाटा छा गया और व्याख्यान के अन्त तक फिर किसी ने चूं न की। जैसा कि मैं पहले बतला चुका हूं शिमला से पण्डित लेखराम सीधे जालन्धर गये थे जहां अपने इकलौते पुत्र का उन्हें अन्त्येष्टि संस्कार करना पड़ा। जालन्धर से परिवार को घर छोड़ कर पण्डित लेखराम सीधे वजीराबाद के वार्षिकोत्सव में सितम्बर, १८९६ के आरम्भ में ही पहुंच गए। इसके विषय में श्री नारायण कृष्ण जी प्रधान आर्य्य समाज गुजरांवाला ने लिखा है—

"आर्य-पथिक सब बातों पर आर्य-समाज के काम को तर्जीह दिया करते थे। हम लोगों को याद है कि एक बार

जब हम लोग वजीराबाद के उत्सव पर गए हुए थे तो वहां हम को समाचार मिला कि पण्डित लेखराम का अकेला बेटा संसार से चल बसा है। वजीराबाद पहले इन के आने की खबर बड़ी गर्म थी परन्तु इस शोकजनक समाचार को सुन कर समझा गया कि अब पण्डित जी नहीं आ सकेंगे। परन्तु बहुत थोड़ी देर के पश्चात् आश्चर्य से देखा कि वह अपने घर से सीधे उत्सव में आ पहुंचे और ऐसी शोक-जनक घटना के होते हुए भी अपने धार्मिक कर्तव्य को बड़ी गम्भीरता से पालन करते रहे।"

वजीराबाद के इस वार्षिकोत्सव में मैं भी सम्मिलित था। पहले दिन पण्डित लेखराम जी का व्याख्यान प्रातःकाल के समय विभाग में छपा हुआ था, परन्तु राजा सर अताउल्ला और उनके परिवार के सम्मिलित होनेके कारण उस समय मुझे खड़ा किया गया। न जाने मुसलमान भाई पण्डित लेखराम से क्या आशा रखते थे कि मेरे व्याख्यान को सुन कर विस्मित हो गए उनकी समझ में न आया कि आर्य-मुसाफिर क्यों ऐसा जन-प्रिय तथा शान्ति-वर्धक व्याख्यान देता है। मेरा विषय ईश्वर-प्राप्ति था और मैंने उस में महम्मदी बुत और पीर परस्ती की भी खबर ली थी; इस लिए श्रोतागण को निश्चय हो गया कि पंडित लेखराम ही बोल रहे हैं।

सायंकाल के व्याख्यान में मेरा नाम था, इस लिए उस समय कादियानी मिर्जा गुलामअहमद के चेले हकीम नूरउद्दीन भी तशरीफ लाए थे। मुसलमानों की भी पर्याप्त उपस्थिति थी जब पण्डित लेखराम व्याख्यान के लिए खड़े हुए। उस व्याख्यान में पण्डित लेखराम ने ईश्वर का स्वरूप ऐसा खींचा कि मुसलमानों के सिर हिलाने लग गए। फिर जब झूठे पैगम्बरों की पोल खोलनी शुरू की तो जहां मुसलमान सर्व साधारण

करतालिका ध्वनि से सभा मण्डप को गुंजाने लगे वहां मौलवी नूरउद्दीन बहुत खिन्न रहे थे, परन्तु उस समय क्या हो सकता था। आर्य-पथिक के व्याख्यान की नगर में धूम मच गई।

सायंकाल हम सब पलकू के किनारे २ श्रोत की ओर दूर निकल गए और सन्ध्या वन्दन से निवृत्त होकर रात को लौट रहे थे कि नगर के बाहर एक मस्जिद के खुले मैदान में मौलवी नूरुद्दीन अपना धर्म-प्रचार कर रहे थे। रात अन्धेरी थी, हम सब सुनने खड़े हो गये। मौलवी साहब बोले—अरे बेवकूफो तुम सब बकरों की तरह दाढ़ी हिला रहे थे और यह न समझे कि तुम्हारे ईमान पर कुल्हाड़ा चल रहा है।" इतना ही सुन मैंने पण्डित लेखराम जी को उनकी कृतकार्यता के लिए बधाई दी और हम सब भोजनशाला को चल दिए।

मुझे यह भी याद पड़ता है कि दूसरे दिन बाजार में आर्य-पथिक की कुछ मुसलमानों से बातचीत होने लगी, जिस पर आर्य पुरुष घबरा गए थे; परन्तु उसका परिणाम अच्छा ही निकला।

हम सब वजीराबाद आर्य-समाज के उत्सव में ही सम्मिलित थे कि मुकेरियां के एक भाई वहां के अधिकारियों का पत्र लेकर पहुंचे जिससे पता लगा कि वहां एक विचित्र प्रकार का शास्त्रार्थ रचा गया है। सनातन सभा के किसी पण्डित ने एक महाभारत के श्लोक को वेद मन्त्र कह कर पेश किया, जिस पर आर्यसमाज तथा सनातन सभा के प्रधानों का विवाद हो गया और दोनों के हस्ताक्षर से एक स्वीकार पत्र स्टाम्प पर लिखा गया। इस स्वीकार पत्र का तात्पर्य यह था कि यदि सनातन सभा का पण्डित अपने बोले श्लोक को वेद में दिखा दे तो आर्य-समाज के प्रधान ५००) जुरमाना देंगे, परन्तु यदि सनातन सभा का पण्डित ऐसा न दिखा सके तो सनातन सभा का

प्रधान ५०) जुरमाना देगा। मैंने इस जुआबाजी के शास्त्रार्थ से इन्कार करना चाहा, परन्तु आर्य-पथिक ने कहा कि जुआबाजी को अलग कर के यह तो हमारा कर्तव्य है कि अपने मत का समर्थन किया जावे। बस हम दोनों गुरुदासपुर पहुंच कर इक्के पर ६ सितम्बर को २ बजे दिन के मुकेरियां पहुँच गए। उस दिन मैंने और दूसरे दिन आर्य-पथिक ने व्याख्यान दिए। तीसरे दिन २००० की उपस्थिति में सनातनी बड़े २ पण्डित भी श्लोक को वेदमन्त्र सिद्ध न कर सके।

परन्तु इस स्थान की एक घटना पंडित लेखराम के हठ और उनके धर्म-प्रेम दोनों का परिचय देती है। मैं यतः मन्त्रों का उच्चारणादि शुद्ध कर सकता था इस लिए मुकेरियां के आर्य भाई चाहते थे कि शास्त्रार्थ मैं करूं। उनको यह डर था कि कहीं पण्डित लेखराम अपने अक्खड़पन से उलटा असर न डाल देवें। जब वेदों में आन्दोलन करके देख लिया कि विवादास्पद छन्द वेद-मन्त्र नहीं प्रत्युत महाभारत का श्लोक है तो मैंने कहा कि हममें से एक को अब जाने दो क्योंकि हम ने जगराउं आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होना है और वहां १२ सितम्बर के प्रातः पहुंचने के लिए मुकेरियां से ११ के प्रातः चल देना चाहिए। जाने को मैं स्वयं तय्यार हुआ जिस पर तीन बार यही उत्तर मिला कि कोई इक्का नहीं मिलता; फिर यह निश्चय हुआ कि पण्डित लेखराम जी जांय। यह निश्चय होना ही था कि पांच मिन्टों में बड़ा तेज इक्का लाकर खड़ा कर दिया गया। पण्डित लेखराम जी असल बात ताड़ गए और बोले—"अब बड़ी जल्दी इक्का आ गया। जाओ मैं नहीं जाता, मैं तुम्हारी शरारत समझ गया हूं।" मैंने इक्का ले जाने को कहा और आर्य भाई घबराए कि अब शास्त्रार्थ में पण्डित लेखराम जी खड़े होकर कहीं काम न बिगाड़ दें। जब

शास्त्रार्थ के मैदान में आए और मैंने पण्डित लेखराम को कुर्सी पर बैठने को कहा तो उनमें विचित्र परिवर्तन दिखाई दिया। ऐसा ज्ञात होता था कि सारे शास्त्रार्थ का उत्तरदायित्व उन्हीं पर है और यह उनका ही कर्त्तव्य है कि सब से योग्य आदमी को शास्त्रार्थ के आसन पर बैठाएं। मुझे कहा—"लाला जी! बैठिए, शास्त्रार्थ आप करेंगे!" मैंने कहा कि पण्डित लेखराम की उपस्थिति में मैं कैसे बैठ सकता हूं। उत्तर बड़े प्रेम और आग्रहपूर्वक था। मुसकिराकर बोले—"यह बात अब जाने दीजिए, यह आप का ही काम है। यदि मैं बैठ गया तो शास्त्रार्थ की रिपोर्ट कौन लिखेगा।" यह कहा और मुझे पकड़ कर कुर्सी पर बैठा दिया।

यह आचरण का परस्पर विरोध शायद सबकी समझ में न आएगा, परन्तु बुद्धिमान् पाठक इसके रहस्य को समझ जायेंगे।

१२ सितम्बर को मुकेरियां से चलकर दिन रात यात्रा करते हुए हम दोनों १३ की प्रातः जगराऊं के वार्षिकोत्सव में जाकर सम्मिलित हुए। जो रहतिए पीछे से शुद्ध होकर आर्य-समाज में सम्मिलित हुए थे वे पहले पहल इसी स्थान में पंडित लेखराम जी को मिले थे।

जगराउं में फिर नियत घटना आकर उपस्थित हुई। वहां के पौराणिकों ने स्वयं आर्य समाज का सामना करने की शक्ति न देखते हुए मुसलमानों को मुबाहसे के लिए खड़ा किया। तहसीलदार भी मुसलमान था, इसलिए उन्हें विजय की बड़ी आशा थी। मैं जब उत्सव समाप्त करके लौटने लगा तो कुछ आर्य भाइयों ने वहां भी मेरी मिन्नत की कि मैं आर्य-पथिक को साथ ही ले जाऊं। मैंने मलेरकोटले की व्यथा याद करके ऐसा करने से इन्कार कर दिया। शहर में धूम मच गई कि आर्यों

को और विशेषतः लेखराम को कष्ट दिया जायगा। परन्तु सिंह के सम्मुख जाना बड़ा कठिन था। विरोधियों की पोल खोलने से पहले आर्य पथिक लेखराम जगराव से न हिले!

२६, २७ सितम्बर को पण्डित लेखराम भङ्ग के वार्षिकोत्सव में व्याख्यान देते तथा शंका समाधान करते रहे।

नवम्बर के अन्त में लाहौर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होकर व्याख्यान दिए और उसके पश्चात् फिर २७ दिसम्बर, १८६६ के दिन जालन्धर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर पहुंचे। इन दोनों महीनों लाहौर रहकर जीवन चरित्र की तय्यारी और छपाई का काम निर्विघ्नता से होता रहा और अपनी माता तथा धर्म-पत्नी को भी आर्य पथिक ने लाहौर में ही टिका दिया। जालन्धर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव पर व्याख्यान देकर पण्डित लेखराम मेरे साथ ही लुधियाना आर्य समाज के वार्षिकोत्सव पर गए। उस स्थान की एक घटना वर्णनीय है जिससे पता लगता है कि प्रतिज्ञा के पालन का भाव आर्य पथिक को कैसा दृढ़संकल्प बनाए हुए था।

लुधियाना आर्य समाज के वार्षिकोत्सव पर अन्तिम दिवस पण्डित लेखराम का व्याख्यान नियत था। उससे पहले मैंने वेद-प्रचार निधि के लिए अपील की थी और जब धन एकत्र हो चुका तो पण्डित लेखराम व्याख्यान के लिए खड़े हुए। ११ माघ, सम्वत् १९५३ के सद्धर्म प्रचारक में लिखा है—
"अभी व्याख्यान आरम्भ नहीं किया था कि पण्डित जी की प्रकृति कुछ रुग्ण हो गई (पेट में दर्द होने लगा था) जिस कारण वह अपना व्याख्यान न दे सके। उनके स्थान में लाला मुन्शीराम जी ने धर्म विषय पर......व्याख्यान दिया...... उनके पश्चात् पण्डित जी की प्रकृति कुछ ठीक हो गई और उनका व्याख्यान आरम्भ हुआ।............जनोपस्थिति

१२०० के लगभग थी।" २९ दिसम्बर की रात को लुधियाना आर्य समाज का उत्सव समाप्त हुआ और ३१ की शाम को पण्डित लेखराम रेल और टट्टू की यात्रा करते हुए शरकपुर आर्य-समाज में पहुंचे और १ जनवरी, १८९७ के दिन धर्म-चर्चा में पूरा भाग लेने के अतिरिक्त एक पतित की शुद्धि की और अपने प्रभावशाली व्याख्यान के साथ वार्षिकोत्सव को समाप्त किया। शरकपुर से लौटकर फिर पण्डित लेखराम के भागोवाला (जिला गुरुदासपुर) आर्य्य समाज के उत्सव में भी सम्मिलित होने का पता लगता है जो १७ और १८ जनवरी को समाप्त हुआ था। उत्सव में पण्डित लेखराम जी ने दो व्याख्यान दिए और उत्सव के पश्चात् तक ठहर कर चौधरी फतेहसिंह के लड़के का नामकरण संस्कार कराया तथा आर्य-समाज के कुछ नए समासद् बनाए। यह सब कुछ तो किया परन्तु मुझे जिस दृश्य में अधिक आनन्द आया वह उत्सव के समय का शास्त्रार्थ था।

सायंकाल अपना व्याख्यान समाप्त करके मैं सन्ध्या वन्दन के लिए चला गया। फिर भोजन करके बैठा था तब पता लगा कि एक मुसलमान मेजुएट के साथ पंडित लेखराम का शास्त्रार्थ हो रहा है। कम्बल ओढ़ कर मैं शास्त्रार्थ का आनन्द लेने चल दिया। जनोपस्थिति अढ़ाई हजार से कम न होगी। आस पास के ग्राम स्त्री पुरुषों से खाली हो गए थे। इनमें दो सहस्र तो जाट थे और शेष ब्राह्मण, खत्री, मुसलमानादि। एक तुर्की टोपी वाला एक ओर और आर्य मुसाफिर दूसरी ओर बैठे हैं। प्रश्नकर्त्ता "तुर्की टोपी" थे और उत्तरदाता पंडित लेखराम। पंडित लेखराम मेरे आने से पहले यह प्रतिज्ञा स्थापन कर चुके थे कि उत्तर में दुर्जन-तोष न्याय के अनुसार जो कुछ वह कहेंगे उसके लिए कुरान वा हदीस मूल का प्रमाण

देंगे, और पूछा था कि क्या महम्मदी प्रश्नकर्त्ता भी ऐसी प्रतिज्ञा करने को तय्यार हैं। "तुर्की टोपी" उत्तर दे चुकी थी कि वह भी मूल वेद का ही प्रमाण देंगे। महम्मदी ग्रेजुएट ने प्रश्न नियोग विषय पर छेड़ा था और जब मैं पहुंचा तो एक पुस्तक हाथ में लिए उसमें से कुछ पढ़ रहा था। मेरे सामने निम्नलिखित नाटक हुआ।

महम्मदी—"देखिए हवाला रगवैद, मन्दिल ········ सोकत··· "

आर्य पथिक—"शुद्ध उच्चारण तक नहीं कर सकते हो और वेद-ज्ञानी का दावा है। बस तुम निग्रह स्थान में आ गये। या तो दावा छोड़ो या हार मानो।"

महम्मदी—"अजी हम वैद जानें या न जानें, एतराज तो ठीक है।"

आर्य पथिक—"पहले कहो—मैंने झूठ बोला कि मैं मूल वेद जानता हूं और मख-मारी—यह कहो तब मुबाहसा आगे चलेगा।"

मुहम्मदी ग्रेजुएट ने बहुत हेराभेरी की परन्तु अन्त में उसको कहना ही पड़ा—"अच्छा मैंने गलत कहा था कि मैं मूल-वेद में से हवाले दूंगा—अब मेरे सवाल का जवाब दीजिये।"

आर्य्य-पथिक- "आए अब राह—ए—रास्त (सीधे मार्ग) पर; हां, अब जवाब देता हूं।"

मेरे पास दस बीस पढ़े लिखे मुसलमान और दो तीन मौलवी खड़े थे, सब बोल उठे—"सुबहानऽल्ला! क्या साफ़ मुनाज़रा (वाद शक्ति) है! शेर के पंजे में फंसा हुआ है।"

पण्डित लेखराम ने न केवल वैदिक नियोग का ही भली

प्रकार मंडन किया प्रत्युत मुसलमानों के मुता के मसअले को भी पेश किया। इस पर मुहम्मदी प्रेजुएट ने कहा—"सिर्फ कुरान की आयत पढ़ देने से काम न चलेगा। किसी मुस्तनिद तफसीर (प्रामाणिक भाष्य) का हवाला भी देना होगा।"

आर्य्य-पथिक—"अच्छा बतलाओ तुम किस तफसीर को मुस्तनिद मानते हो ?"

महम्मदी ग्रेजुएट ने जिस तफसीर का नाम लिया वही पण्डित लेखराम के हाथ में थी, उन्होंने उसमें से पढ़कर सुना दिया। मालूम होता है कि तुर्की टोपी ने कभी कोई तफसीर वफसीर पढ़ी न थी, पण्डित लेखराम से किताब खुद पढ़ने को मांगी। यहां पण्डित लेखराम की हाजिर जवाबी काम आई। महम्मदी ग्रेजुएट मुबाहसे में एक स्थान में कह चुका था कि "खुदा को बीच में क्यों घसीटते हो, क्या लाजमी है कि खुदा को मान कर ही मुबाहसा चले ?" इसी का सहारा लेकर और सामने खड़े एक वृद्ध मौलवी साहेब को सम्बोधन करके आर्य-पथिक ने कहा—

"मौलवी साहब ! आप तशरीफ लाकर हाजरीन को पढ़ सुनाइये कि कुरान शरीफ की तफसीर में क्या लिखा है। इस दहरिए (नास्तिक) के हाथ में मैं कुरान शरीफ न दूंगा।"

मौलवी साहब को कोई आकर्षण शक्ति वेदी पर खींच ले गयी और उन्होंने तफसीरके शब्द ज्यों के त्यों पढ़कर अपनी ओर से यह भी कह दिया—"कौन कहता है कि कलाम मजीद में मुताका हुक्म नहीं है ?"

सभा मण्डप करतलध्वनि से गूंज उठा और सभा विसर्जन हुई।

इसके पश्चात् पण्डित लेखराम जम कर लाहौर में ही जीवन चरित्र का काम करते रहे और उनके कहीं बाहर प्रचार

के लिए जाने का पता नहीं लगता। मैंने भी उनका यह अन्तिम व्याख्यान सुना; इसके पश्चात् पण्डित लेखराम का सबसे अंतिम प्रचार मुलतान नगर में हुआ जिसका हाल उनके पत्र से ज्ञात होता है। उन्होंने ४ मार्च को ११ बजे रात्री के समय, मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा को लिखा था—मेरे यहां ४ व्याख्यान हुए, खूब रौनक रही। मेरे सक्खर जाने के लिए यहां के समाज की सम्मति नहीं है, क्योंकि वहां क्वारन्टीन बीमारी का लगा हुआ है। मुझे आग्रहपूर्वक उन्होंने रोक लिया है और आपको तार दे दी है मुजफ्फर गढ़ में दूसरा समाज होने की शङ्का है इसलिए आज रात को वहां जाता हूं।"

पाठक वृन्द! आपने आर्य पथिक के जीवन के साथ साथ इतनी यात्रा की, आपका उत्साह बढ़ता गया और इस पवित्र जीवन के साथ प्रेम की वृद्धि होती गई। क्या आप अकस्मात् इस जीवन शृङ्खला को टूटते देखकर दुखित न होंगे? मैं भी उसी प्रकार दुखित हूं और चाहता नहीं कि उसका वर्णन शीघ्र समाप्त हो। परन्तु काल की गति के आगे किसका वश चला है। फिर भी मुलतान के अन्तिम प्रचार को विस्तृत करके शिर पर आई हुई आपत्ति को कुछ काल के लिए टालना चाहता हूं।

मुलतान में कालिज दल वालों की ओर से दूसरा आर्य्य-समाज खुला हुआ था। उन्होंने आर्य प्रतिनिधि सभा के काम के विषय में कुछ भ्रम फैलाए थे जिन्हें दूर करने पण्डित लेखराम गए थे। पण्डित लेखरामजी के मुकाबिले में इन लोगों ने भी व्याख्यान कराए जिनमें पण्डित लेखराम को अपशब्द ही न कहे गये प्रत्युत सिक्खों को भड़काने के लिये उन्हें गुरु निन्दक बतलाया गया। ऐसी अवस्था हो चुकी थी जब ४ मार्च को पण्डित लेखराम का उस जीवन में अन्तिम व्याख्यान

हुआ। इसका आंखों देखा हाल एक सभ्य पुरुष ने, १४ वर्ष हुए, मुझे लिखकर भेजा था जिसे यहां उद्धृत करता हूं :—

"पण्डित लेखराम जी के व्याख्यान कुप्पबङ्गरी-गीरां और समाज मन्दिर में होते रहे। मैंने जाकर मुसलमानों से कहा कि उनसे मुबाहसा कर लो, वे कहने लगे कि यह बड़ा आलिम (विद्वान्) है हम उसकी बराबरी नहीं कर सकते।..... ... .एक दिन पण्डित जी ने लाला काशीराम वकील को, जो उस समय कल्चर्ड समाज के प्रधान थे, और चेतनानन्द जी (वकील) को समाज मन्दिर में बुलवाया और उन से कहा—'देखो मिर्जा ने कैसी सख्त किताब लिखी है जो कि अनजानों को भ्रम में डाल सकती है। इसका उत्तर अवश्य देना चाहिए। आप लोग निरे लड़ाई झगड़ों में पड़े हुए हो।" बहुत सी बात चीत हुई परन्तु कुछ परिणाम न निकला, क्योंकि उसी दिन उन लोगों ने भाई जगतसिंह का व्याख्यान कुप्पबङ्गरीगीरां" में कराया। वहां खालसों की उपस्थिति खासी थी जिसमें लाला काशीराम और लाला चेतनानन्द ने स्वयम् कहा कि पंडित लेखराम कहता है कि गुरुनानक मुसलमान था इसलिये उसका समाज से कोई सम्बन्ध नहीं। मैं कुछ भाइयों समेत पंडित जी के दर्शन को गया और व्याख्यान का सारा हाल उन्हें सुनाया। कुछ देर सोचने के पश्चात् बातचीत करते हुए पंडित जी के मुंह से निकला—"कौन कहता है कि गुरुनानक मुसलमान थे? चलो कल यही व्याख्यान होगा।"

नोटिस रात को ही लिखे गये। दूसरे दिन ४ बजे सन्ध्योत्तर मैं समाज-मन्दिर में गया। कई भाइयों के प्रश्नों के उत्तर देते रहे। फिर अजवायन मंगाई और साफ करके पानी के साथ खा ली और कहा—"रेल में यही मेरा जीवन है, यह

बड़ी उत्तम औषधी है।" सात बजते ही पंडित जी व्याख्यान के मैदान में पहुंचे। हम लोग भजन गाते थे और पण्डित जी पेन्सिल से व्याख्यान के लिए नोट लिख रहे थे। सिक्ख भड़काए हुए बड़े जोश से लाठिएं लिये जमा थे। व्याख्यान आरम्भ हुआ। आर्यावर्त्त की अवनति के आरम्भ काल से वक्तृता को उठा कर परस्पर के द्वेष के बीज का खोज लगाते हुए बतलाया कि थोड़े से स्वार्थ ने आर्यावर्त्त का नाश कर दिया है। आपने बतलाया कि महमूद और अलाउद्दीन के विजय का साधक तुच्छ जीवों का स्वार्थ ही था। बहुत से दृष्टान्तों के पश्चात् आपने विष्णु बावा, मुंशी इन्द्रमणि और स्वामी दयानन्द की हिम्मत का वर्णन किया जिन्होंने विरोधी आक्रमणों से आर्यजाति को बचाने का प्रयत्न किया। इसके पश्चात् अपने विषय को लेकर मिर्जा गुलाम अहमद की 'सत् वचन" पुस्तक में से गुरु नानक के मुसलमान होने के विषय में लेख पढ़कर चारों ओर देख पूछा—"यदि कोई खालसा बहादुर विद्यमान है तो इसका जवाब दे।" फिर लाला काशीरामादि के उत्तर में "ग्रन्थी फोबिया" पुस्तक पेश करके पूछा कि जिन कल्चर्ड साहेबान ने गुरु नानक के विरुद्ध ऐसी पुस्तक छपवाई, क्या वे अब गुरु नानक के पवित्र आचरण पर लगाये कलंक को दूर कर सकते हैं?" फिर बड़े प्रबल प्रमाणों और युक्तियों से सिद्ध किया कि गुरु नानक मुसलमान न थे।

व्याख्यान की समाप्ति पर लाला चेतनानन्द जी के मुंशी ने विघ्न डालने की नीयत से कहा- "पंडित (लेखराम) जी ने (अपने व्याख्यान में) गुरु नानक को हिन्दू तो कहीं नहीं कहा" इस कुटिल नीति को भी पंडित लेखराम की हाजिर जवाब ने परास्त कर दिया। आर्य पथिक बोले —

"देखो बाबा नानक देव स्वयं क्या कहते हैं - "हिन्दू अन्हा

(अन्धा) तुर्कों काणा। दोहां विच्चों ज्ञानी स्याणा - बाबा नानक जी ज्ञानी अर्थात् आर्य्य थे, गुलाम हिन्दू न थे।"

हमारे चरित्र नायक के जीवन की रंग भूमि में अन्तिम जवनिका उठने वाली है। वह अन्तिम दृश्य बड़ा ही मर्म भेदक, गम्भीर और पवित्र है जो अपने स्थिर संस्कार आर्य जनता पर छोड़ गया है। उसकी अन्तिम जवनिका के गिरने के पश्चात् कुछ लिखना पाठकों के उच्च आदर्श की ओर उठे हुए हृदयों को फिर से भूमि तल पर पटकने के सदृश होगा, इसलिये आइये, इस विचित्र जीवन पर एक व्यापक दृष्टि पहले से ही डाल जायें।

आर्य्य-पथिक का चरित्र संगठन
गुण-दोषों पर एक दृष्टि

बचपन से ही लेखराम पर ब्राह्मणत्व के संस्कार पड़ रहे थे। यद्यपि वर्ण विचार से जन्म क्षत्रिय गृह में हुआ था तथापि लेखराम के पूर्व जन्म के प्रबल संस्कार, विरुद्ध वायु-मण्डल में भी, उन्हें ब्राह्मणत्व के सांचे में ढाल रहे थे। उनका त्याग का सरल जीवन निस्सन्देह साक्षी दे रहा था कि पुलिस के बदनाम महकमे के अन्दर भी सावधान रह कर वह एक दिन इन्द्रियों के दासत्व की बेड़ी को काट डालेंगे। तमाकू की तो बचपन में ही बैतुल बाज़ी से जड़ काट डाली थी। मांस मद्य तथा अन्य मादक द्रव्यों के कभी समीप नहीं गये। पाप रूपी दूषण तो एक ओर रहे किसी व्यसन को भी जीते जी समीप नहीं आने दिया। और तो और पान भी कभी नहीं खाया। कपड़ों के बनाव चुनाव को वह जनाना-पन के नाम से पुकारा करते थे। स्वास्थ्य अत्युत्तम रहता था, इसलिये पोशाक से शोभा बढ़ाने की उन्हें आवश्यकता न थी। कैसे भी कपड़े किसी ढंग से पहन लें, उनके शरीर पर स्वयं शोभा पा जाते थे। जब तक

अत्यन्त आवश्यकता न होती तब तक दरमियाने दर्जे में भी यात्रा न करते। और जो व्यय करते वही सभा से लेते। जहां अन्य उपदेशक पूरे इक्के का किराया १) लगाते वहां आर्य पथिक के बिलों में उसी स्थान का किराया साढ़े तीन आने दर्ज होता। जहां कुली से असबाब उठवा कर ले जाने में बचत होती वहां इक्का गाड़ी पर नहीं बैठते थे। और यदि यात्रा में कहीं उतरने से अपना काम भी होता तो वहां का किराया सभा से न लेते। दृष्टान्त के लिये केवल एक वार का पत्र व्यवहार पेश करना काफी होगा। सभा के मन्त्री जी ने १५ जनवरी १८९६ को लिखा था—"मान्यवर पण्डित जी नमस्ते! आपके ९६ के बिल में जो ७ दिसम्बर को लाहौर तक का किराया रेल और विविध लिखा है उसमें "विविध" से क्या तात्पर्य है तथा आपने २३ दिसम्बर, १८९५ को सहाले से लाहौर तक का किराया २।।=) लिखा है, परन्तु लाहौर से सहाले तक का किराया आपने नहीं लिखा, इसका क्या कारण है? यदि भूल हो गई हो तो सूचित कीजिये कि बिल में दर्ज कर दिया जावे।"

इसके उत्तर में पण्डित लेखराम ने लिखा—"विविध से तात्पर्य है, किराया मजदूर का जो स्टेशन से शहर तक दिया गया है। और लाहौर से सहाले तक का किराया मैंने जान बूझ कर नहीं लिखा क्योंकि वह आधा कुछ मेरा निज का काम था, और ऐसा किराया मैं वसूल नहीं किया करता।"

सतोगुणी ब्राह्मण मैं लेखराम को इसलिए कहता हूं कि वह

सचाई और सदाचार की मूर्ति थे।

ऊपर वर्णन की हुई कहानी में आर्य-पथिक की सत्य परायणता के बहुत से प्रमाण मिलते हैं। साधारण मामलों में तो मैंने प्रायः अच्छे उपदेशकों को सत्यवादी पाया है, परन्तु आर्य

सिद्धान्तों के मानने में ऐसे उच्च कोटि के उपदेशक भी गिर जाते हैं और स्वयं जिस सिद्धान्त पर सन्देह हो उसको भी सिद्ध करने खड़े हो जाते हैं। पंडित लेखराम का व्यवहार इससे सर्वथा विरुद्ध था। जब तक नियोग समझ में नहीं आया था तब तक खुली सम्मति देते थे और जब द्विजों के लिए नियोग की आज्ञा समझ ली तो उसकी पुष्टि में पुस्तक लिख दी। कौन नहीं जानता कि पंडित लेखराम का अन्दर-बाहर एक सा था।

सत्य-परायणता के साथ सदाचार का तो गाढ़ा सम्बन्ध है ही। न केवल यही कि पंडित लेखराम ३५ वर्ष की आयु तक पूर्ण ब्रह्मचारी रहे प्रत्युत मैं जानता हूं कि गृहस्थाश्रम में भी ऋतुगामी रहते हुए वह ब्रह्मचारी ही थे। सदाचार से उनको बड़ा प्रेम था।

जिस प्रकार सदाचार के साथ उन्हें बड़ा प्रेम था उसी तीक्ष्णता से वह दुराचार से अत्यन्त घृणा का भाव प्रकट करने से नहीं रुकते थे। यद्यपि महात्माओं के लिए महामुनि पतंजलि ने पाप के लिये उपेक्षा की वृत्ति धारण करने का उपदेश दिया है, परन्तु यह गुण पूर्ण योगी जनों में ही पूर्ण रूप से स्थिर होता है। पंडित लेखराम जैसे मध्यम श्रेणी के धार्मिक वीरों में से थे वैसे क्षात्र धर्म मिश्रित गुण भी उनमें प्रवेश किए हुए थे। धर्म की आड़ में अधर्म होता देखकर वह डांट बताए बिना रह नहीं सकते थे। और आर्य समाज के सभासदों को गिरे हुए देखकर तो उन्हें बहुत ही शोक हुआ करता था। इस सम्बन्ध में मैं उनकी नोट बुक से कुछ लेख उद्धृत करता हूं।

सं० १८९१ ई० के जनवरी मास में पंडित लेखराम ऋषि दयानन्द के जीवन वृत्तान्त का मसाला इकट्ठा करते हुए दानापुर (बिहार प्रान्त) आर्य समाज में पहुंचे। वहां के विषय में उनकी गुप्त नोट बुक में दर्ज है—'दानापुर समाज

का एक अफसोसनाक हाल —२७, २८ जनवरी १८६१ ई० (१) वहां के तमाम मेम्बर बिरादरी के डर के मारे श्राद्ध करते हैं। (२)—नामी मेम्बर आर्य समाज के घर में उसके लड़के की शादी है। उसने २७ जनवरी की रात को एक कत्थक का नाच कराया जिसमें चन्द मुअज्जिज मेम्बर आर्य समाज गए। भूतपूर्व मन्त्री,—उपप्रधान,—आदि। और आज २८ जनवरी बुद्धवार को उसके यहां रंडी का नाच है। मुझे अफसोस से मालूम हुआ कि एक मेम्बर ने आर्य समाज के मन्दिर में आकर लोगों को यह न्योता दिया कि आज भी तुम चलना।

"बिरादरी का जोर तोड़ने के वास्ते मेम्बर लोग बिलकुल कोशिश नहीं करते। वैसे हालत समाज की अच्छी है। मकान भी अपना जर-खरीद है; एक स्कूल भी जारी है, स्कूल के हेडमास्टर समाज के प्रधान हैं, तादाद भी एक माकूल है, हाजिरी भी माकूल होती है, २५ मेम्बर सन्ध्या करने वाले भी हैं, कुछ हवन करने वाले भी हैं, ताअरीफ भी खासी—लेकिन वे सूद! (व्यर्थ)"

इसमें सन्देह नहीं कि दुराचार से आर्य्य-पथिक को बड़ी घृणा थी परन्तु इसलिये दुराचारी पुरुष को त्याग कर उसे उसके भाग्य पर छोड़ देना वह अनार्य्य न समझते थे जब किसी आर्य्य समाज में जाकर किसी काम करने वाले को अनुपस्थित पाते और सामाजिक सभासदों से उस पर दुराचार का आक्षेप सुनते तो सैर को चलते हुए उसके यहां पहुंच जाते और उसे साथ ले समझा कर गिरते २ उसे बचा लेते। ऐसी कई आप बीती घटनाएं लोगों को याद होंगी। यही कारण था कि यद्यपि मुहम्मदी मत को सब से बढ़ कर दुराचार की शिक्षा रूपी विषय फैलाने का साधन समझ कर उसकी जड़ उखाड़ने को उद्यत रहते थे परन्तु मुहम्मदी

जिज्ञासुओं के साथ जो उनको प्रेम था वह उनके मित्र भली प्रकार जानते हैं, और इसी प्रेम ने अन्तको उन्हें एक महम्मदी राक्षस की छुरी का शिकार बनाया।

यह प्रसिद्ध है कि साधारण सच्चे आदमी प्रायः क्रोधी अधिक होते हैं।

हठ और क्रोध की मात्रा पंडित लेखराम में भी अधिक थी। यों तो थोड़े ही सच्चे आदमी ऐसे देखने में आते हैं जिनमें हठ और क्रोध का अभाव हो, किन्तु जिन धर्मसेवकों को दिन रात मूढ़ता, कुटिलता और अधर्म के साथ युद्ध करना पड़ता है उनकी हठ और क्रोध की मात्रा रुद्र रूप धारण कर लेती है। यह सौभाग्य शताब्दियों के पश्चात् किसी योगी संशोधक को प्राप्त होता है कि वह अधर्म के लिए रुद्र रूप धारण करते हुए भी क्रोध और हठ को वश में रख सके। पंडित लेखराम योगी न थे और नहीं धर्म के प्रवर्तकों में से एक, इसीलिये उनमें हठ और क्रोध रूपी दोनों निर्बलताएं थीं। किन्तु हम उनके जीवन-वृत्तान्त में यह कहीं नहीं पाते कि उस हठ या क्रोध से किसी का कुछ हानि पहुंची हो।

एक बार अजमेर के आर्य्य समाज मन्दिर में डेरा लगाने के पश्चात् कुछ लिख रहे थे। बाबू रामविलास शारदा जी (जो वैदिक यन्त्रालय के अजमेर पहुंचने के दिन से ही उसके संरक्षक रहे हैं) ने पूछा कि महाराज क्या लिख रहे हो ?

उत्तर मिला—"वैदिक प्रेस वालों की जरा सी बेपरवाही से हमारे सिर पर आफत आ जाती है और विरोधियों को उत्तर देते थक जाते हैं। देखो इस पत्थर-पूजक ने एक पुस्तक लिखी है जिसने यन्त्रालय की लापरवाही से फायदा उठाकर बहुत से ऊटपटाङ्ग ऐतराज किये हैं। हम किस २ का उत्तर दें; आप लोग कुछ प्रबन्ध नहीं

करते।" शारदा जी ने निवेदन किया कि गलतियां पुरानी हैं उनके संशोधन का कुछ तो प्रयत्न हो ही रहा है। इस पर क्रोध में भर कर बोले—"खाक कर रहे हो" और जो ५० वा ६० पृष्ठ लिखे हुए थे सब फाड़ डाले। जब शारदा जी फटे पत्र इकट्ठा करने लगे तो उन्हें भी छीन लिया। शारदा जी उदास हो कर घर चले गए। और दूसरे दिन नियमानुसार पण्डित जी को मिलने न गए तब तो हमारे वीर उनके घर जाने को तय्यार हो गए। लोगों ने चपरासी दौड़ाया; शारदा जी तत्काल हाजिर हुए। शारदा जी ने अपने न आने का कारण बतलाया तो आप गुलाब की तरह खिल गए और बोले—"ईश्वर जानता है शारदा जी आप आर्य समाज के सच्चे प्रेमी हैं, मैं उस पत्थर-परस्त का जवाब जरूर लिखूंगा।" और फिर आपने "सांच को आंच नहीं" शीर्षक देकर शिवनारायण प्रसाद कायस्थ की पुस्तक का उत्तर लिखा जो "कुल्लियात आर्य-मुसाफिर" के १६४ पर से आरम्भ होता है। हठ तो पण्डित लेखराय में बहुत था, जिस के दृष्टान्त बचपन से ही मिलते हैं, परन्तु उस हठ का ही परिणाम प्रतिज्ञा पालन की धुन थी। आर्य-पथिक ने एक बार जो मुंह से निकाला उसे हठ कर के भी निभाने का सदैव प्रयत्न किया। इन के अन्दर जहां धर्म के साथ प्रेम का भाव सर्व साधारण से कहीं बढ़कर था वहां उस के निभाने के लिए आत्म-समर्पण तथा तप का भी बड़ा उच्च भाव था। इसके उदाहरण जहां बचपन से मिलते हैं वहां युवाऽवस्था में यह भाव हम यौवन पर चढ़ा हुआ पाते हैं! रिसाला धर्मोपदेशक के लिए एक दो वार कातिब (कापी नवीस) न मिला। स्वयं अभ्यास कर के छापने की स्याही से कापिएं लिखीं किन्तु रिसाले को बन्द न होने दिया।

हम देख चुके हैं कि १२ वर्ष की आयु में ही अपनी चची

को एकादशी व्रत करते देखकर स्वयं उपवास करने लग गए थे और जब तक उस पर श्रद्धा रही दृढ़तापूर्वक इस व्रत को निबाहा।

ज्वर हो, फोड़े निकले हों, चलने के अयोग्य हों, पुत्र की मृत्यु का शोक हो; कोई भी आपत्ति वा विपत्ति उन को अपने कर्तव्य पालन से नहीं रोक सकती। उन की दो काल की सन्ध्या के अटूट नियम की साक्षी में मेरे पास सैंकड़ों पत्र पहुंचे हैं। जब मेरे साथ शिक्रम की सवारी में लुधियाने से जगरावं जा रहे थे तो मार्ग में पानी लेकर शौच के लिए गए। लौटने पर पता लगा कि हाथ पैर धोने और कुल्ला करने के लिए पानी नहीं है। मैं नीचे था और पण्डित लेखराम ऊपर की छत पर थे। मार्ग में कुछ पूछने को आवाज दी, उत्तर कुछ न मिला। देखा तो आर्य-पथिक सन्ध्या कर रहे हैं। अब दूसरी चौकी पर शिक्रम पहुंची तो एक भाई ने पूछा—"पण्डित जी! क्या पेशावरी सन्ध्या हो चुकी ?" पण्डित लेखराम ने गम्भीर स्वर में उत्तर दिया—"तुम पोप हो जो विना पानी मिले ब्रह्मयज्ञ नहीं कर सकते। भोले भाई! स्नान कर्म है, हुआ वा न हुआ; परन्तु सन्ध्या धर्म है और उसका न करना पाप है।"

प्रतिज्ञा-पालन में ऐसी दृढ़ता का ही परिणाम था कि धर्मवीर लेखराम धर्म में राजीनामा नहीं किया करते थे।

जहां लेखराम के चरित्र में हम कुछ साधारण निर्बलताएं पाते हैं, वहां कई प्रकार की दृढ़ताओं को पराकाष्ठा तक पहुंची हुई देखते हैं। आत्म-सम्मान और निर्भयता के लिए मान इन के मन में वर्त्तमान सांसारिक सीमा से भी बढ़ा हुआ था। बचपन में ही जब मदरसे में प्यास लगी तो मदरसे का घड़ा भ्रष्ट देखकर मौलवी से प्यास बुझाने के लिए घर जाने की

आज्ञा मांगी। मौलवी साहेब ने फरमाया—"यहीं पीलो, छुट्टी नहीं मिल सकती।" हमारे आत्मसम्मानी चरित्र नायक ने न तो फिर मौलवी से ही गिड़गिड़ा कर पूछा और न ही भ्रष्ट घड़े से पानी पिया; सायंकाल तक प्यासे ही बिता दिया।

एक विश्वासपात्र महाशय से पता लगा कि पंडित लेखराम मिडिल की परीक्षा में शामिल हुए थे। भारतवर्ष के इतिहास सम्बन्धी प्रश्न के उत्तर सरकारी किताबों के अनुसार देने की जगह आपने उनका खण्डन आरम्भ कर दिया। जहां अन्य विषयों में बहुत ऊंचे अङ्क प्राप्त किए वहां इतिहास में शून्य प्राप्त किया। किन्तु उसी इतिहास में अनुत्तीर्ण लेखराम को पांच वर्षों के पश्चात् पेशावर प्रान्त के हाकिमों ने जिले का इतिहास लिखने के लिए ऐतिहासिक मसाला जमा करने के काम पर लगाया था। उनके लिए धर्म धर्म था और अधर्म अधर्म। वह नहीं समझ सकते थे कि आग और पानी का कैसे मेल हो सकता है। यह भाव कभी-कभी व्यर्थ छिद्रान्वेषण की अवस्था तक पहुंच जाता था और उससे उपदेश के काम को (बाह्य दृष्टि से) हानि भी पहुँच जाती थी, परन्तु लेखराम अपने स्वभाव को इन छोटी हानियों के लिए बदल नहीं सकते थे। बहुत से धर्मात्माओं की सम्मति है कि अपने मन्तव्यों तथा धर्म के नियमों से न गिर कर भी राजीनामा हो सकता है, परन्तु यदि यह हठ का भाव एक निर्बलता है तो हम उसे लेख-राम के आचरण में छिपाना नहीं चाहते।

परन्तु इस निर्बलता का ही परिणाम था कि हम लेखराम में अभय पद का आदर्श अवलोकन करते हैं।

आर्य पुरुष प्रत्येक यज्ञ की समाप्ति पर प्रार्थना करते हैं —

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावा पृथिवी उभे इमे। अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादभयं नो अस्तु ॥ ३४ ॥ अभयं

मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात् । अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥ २५ ॥

अथर्व० का० १६ सू० १५ । मं० ५ । ६

पंडित लेखराम न केवल इन मन्त्रों का पाठ ही करते थे, वह इन मन्त्रों में बतलाई हुई अवस्था को प्राप्त करने का प्रयत्न भी करते थे। उनके जीवन में ऐसी घटनाएं बहुत सी मिलती हैं जिनका वर्णन कायर हृदयों के अन्दर वीरता का संचार कर देता है।

बन्नू में जब १८६४ में पहुंचे तो समासद् आपस में इस विषय पर कानाफूसी करने लगे कि जाहिल मुसलमानों के वेजा जोश से रक्षा के लिए पुलिस का प्रबन्ध करना चाहिए। पंडित जी ने यह सुनकर मन्त्री को कहा—"अगर मैं मुसलमानों से डरूं तो घर क्यों न बैठ रहूं, प्रचार के लिए बाहर क्यों निकलूं। पुलिस की कुछ जरूरत नहीं है।"

मलेरकोटला, जगराऊं, शिमला आदि की घटनाएं अभी सैकड़ों आर्यों को नहीं भूली होंगी। धर्मवीर सचमुच अपनी जान हथेली पर लिए फिरते थे।" इसीलिए तो आर्य जाति के कई भूषणों ने उनका नाम आर्य समाज अली रक्खा हुआ था; और यह नाम सार्थक भी था क्योंकि मुसलमानों का खण्डन करते करते उनमें स्वयं भी कुछ "जिहादी" भाव प्रवेश कर गए थे।

वेद में लिखा है—ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्

मनुष्य सृष्टि में ब्राह्मण शरीर के मुख्य भाग के तुल्य है। जैसे मुख में पांचों ज्ञानेन्द्रिय हैं और कर्मेन्द्रिय केवल वाणी है, इसी प्रकार ब्राह्मण का लक्षण यह है कि दिन रात ज्ञान की प्राप्ति में लगा रहे और जैसा ज्ञान प्राप्त हो उसका यथावत् प्रचार कर दे। मुख में जो भोजन डाला जाय उसे पचने के

योग्य बनाकर मुख शरीर के शेष भाग में बांट देता है; अपने लिए कुछ नहीं रखता। इसी प्रकार ब्राह्मण का धर्म है कि जहां अन्य वर्णों को शुद्ध आजीविका के साधन बतलाए वहां स्वयं अर्थ संचय में न फंसे। मैं दिखला चुका हूं कि ब्राह्मण के अन्तिम लक्षण का तो पण्डित लेखराम स्वरूप ही थे परन्तु, अन्य लक्षण भी उनमें भली प्रकार घटते हैं। ज्ञान प्राप्ति के लिए उन्हें था

तत्वान्दोलन में अनुराग।

पंडित लेखराम यद्यपि इङ्गलिश भाषा से सर्वथा शून्य थे और संस्कृत भी साधारण ही जानते थे, तथापि उद्यमशीलता तथा धैर्य्य की सहायता से इन भाषाओं में लिखे हुए ग्रन्थों में से भी ऐसी विचित्र (अपने मतलब की) बातें निकाल लाते थे जिनका उन भाषाओं के जानने वालों को स्वप्न भी न होता था। यही कारण था कि आर्य-प्रतिनिधि सभा पंजाब तथा सजीव आर्य-समाजों के अधिकारियों पर जब कभी वैदिक धर्म के सिद्धान्तों के विषय में बाहर से प्रश्न होते तो वे उन प्रश्नों को उत्तर प्राप्त करने के लिए पंडित लेखराम के पास ही भेजा करते। मुझे इस प्रकार का बहुत सा पत्र व्यवहार मिला है जिसमें न केवल महम्मदी तथा ईसाई मत के अनुयायियों के प्रश्नों के उत्तर के लिए ही पण्डित जी को प्रेरित किया गया है प्रत्युत ऐसे प्रश्न भी उनके पास आन्दोलनार्थ भेजे गये हैं जिनका सम्बन्ध संस्कृत के गूढ़ ग्रन्थों तथा अंग्रेजी के अनात्मवाद (Materialism) के साथ था। ऐसे प्रश्न पत्रों में मुझे दो पत्र बालमुकन्द आर्य के, उर्दू भाषा में लिखे हुए, मिले जो उक्त महाशय ने रावलपिण्डी से आषाढ़ तथा कार्तिक सं० १९४० में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के नाम भेजे थे। इन पत्रों से विदित होता है कि उन दिनों भी बहुत से आर्य्य-समाजी बिरादरी के मुकाबिले की शक्ति न रखते हुए ऋषि

दयानन्द के ग्रन्थों से ही जन्म को वर्ण व्यवस्था का निर्णायक सिद्ध करने का प्रयत्न किया करते थे और ऐसा करने के लिए आज कल के थियासोफिस्टों (Tneosopbists) से भी बढ़ कर दयानन्द के शब्दों की खींच तान किया करते थे।

अङ्गरेजी ग्रन्थों से प्रमाण ढूंढने की इन्होंने विचित्र विधि निकाली। जब किसी ऐसे अंग्रेजी पढ़े के यहां जाते जिन्हें ग्रन्थावलोकन में अनुराग दिखाई देता तो पण्डित जी का पहला प्रश्न उससे यह होता—"सुनाइये कोई नई किताब पढ़ी।" यदि उसने किसी नई किताब का नाम बतलाया तो जब तक उससे उस पुस्तक के सारे विषय न पूछ लें उसकी जान न छोड़ते, और जो बात उन्हें अपने मतलब की मालूम होती उसे उसी भद्र पुरुष से अपनी नोट बुक में लिखवा लेते। फिर वह लिखी हुई इबारत दूसरे ग्रेजुएटों (Graduates) से पढ़वा और एक दूसरे के किये अर्थों को आपस में मिलाकर निश्चय करते कि वह प्रमाण किस काम में आ सकेगा। किन्तु उस पहले नोट की यहीं समाप्ति न होती। जिस जिस नये अंग्रेजीदां से मिलते उसी विषय पर उसके विशेष पढ़े पढ़ाये हुए का स्मरण दिलाकर जितने नये प्रमाण उस विषय पर मिलते उन्हें इकट्ठा करते जाते।

इस सम्बन्ध में मुझे एक मनोरञ्जक वृत्तान्त याद आया है जो स्वर्गवासी धर्मात्मा विश्वासी लब्भूराम बी० ए० ने मुझे सुनाया था। "मौत के पश्चात् का दिन" (The day after death) नामी लोइसफिग्योर कृत पुस्तक उन्हीं दिनों अधिक प्रसिद्ध हुई थी और पंडित जी अपनी "मसऽल-ए-तनासुख" (पुनर्जन्म) नामी पुस्तक के लिये नोट तैयार कर रहे थे। आपने फिग्योर की पुस्तक में से पुनर्जन्म सम्बन्धी एक उदाहरण किसी से नकल कराया हुआ था जो लब्भूराम जी

को दिखा और अर्थ करने को कहा। लब्भूराम जी ने साफ अर्थ कर दिये जिससे पंडित जी का पूरा मतलब सिद्ध न हुआ, अर्थात् लुइस फिग्यूर उच्चयोनि से नीच योनि में गिरना नहीं मानता था। पंडित जी बोले—"भाई, जरा संभल के अर्थ करो। यह अर्थ कैसे हो सकते हैं। मनुष्य से जहां देव योनि में जाना मानता है तो नीच पशु योनि में जाना भी मानता होगा।" लाला लब्भूराम ने फिर वही अर्थ किये जिस पर पंडित जी खिसियाने होकर बोले—"खाक अंगरेजी पढ़े हो! आपने बी०ए० की ही मट्टी खराब की। यह अर्थ भला कैसे हो सकते हैं।" लब्भूराम जी वक्ता थे रसीले, बोले—"पंडितजी! अर्थ तो वही हैं जो मैंने किये, मगर आपके डण्डे के डर से कहिये आपकी सी ही कह दूं।" पंडित जी का गुस्सा हिरन हो गया और मुस्करा कर बोले—"ईश्वर जानता है! लब्भूराम जी आप बड़े होनहार हैं। इन योरोपियनों को अभी पूरी समझ नहीं आई। रफ्तः रफ्तः (शनैः शनैः) समझ जायेंगे।"

इसमें सन्देह नहीं कि पण्डित लेखराम जिस लक्ष्य (अर्थात् वैदिक-धर्म के सिद्धान्तों की पुष्टि) को सामने रखकर आन्दोलन किया करते थे वह उन्हें किसी किसी समय अप्रामाणिक बातों के लिये भी प्रमाणों की कमी नहीं छोड़ता था, परन्तु अपनी पुस्तकों में उन्होंने वही प्रमाण लिखे हैं जिनकी पुष्टि अकाट्य प्रमाणों से हुई। उदाहरण के लिए एक ही दृष्टान्त लीजिये जो पण्डित लेखराम की ऐतिहासिक खोज प्रणाली पर बड़ा प्रकाश डालता है।

पंडित लेखराम ने दो भागों में "तारीख-ए दुनिया" नाम की एक लघु पुस्तक लिखी थी। उसमें विविध सम्वतों का वर्णन करते हुए उन्होंने आर्य ग्रन्थों के लिखे जाने के समय भी निश्चित किये हैं। पुस्तक का आधार उन नोटों पर प्रतीत

होता है जो उक्त पंडितजी की नोटबुक में मुझे मिले हैं। पंडित जी को आन्दोलन प्रणाली यह थी कि पहिले प्रतिज्ञा रूप से उस सिद्धान्त को लिख लेते थे जो उन्हें सिद्ध करना अभीष्ट होता। फिर जिन जिनके लिये प्रमाणाधार मिलता उसको रख कर शेष को काट देते। उनके नोटों में पहले वेदों के निर्माण का समय १ अरब ९६ करोड़ ८ लाख ५२ हजार ९ सौ ८९ वर्ष के देकर, उपनिषदों का समय इस प्रकार लिखा है :—

प्रथम मन्वन्तर—ईशोपनिषद्। दूसरा मन्वन्तर—केन। तीसरा मन्वन्तर—कठ, प्रश्न। चौथा मन्वन्तर—मुण्डक, माण्डूक्य। पांचवां मन्वन्तर-ऐतरेय, तैत्तिरीय। छठा—छान्दोग्य-सातवां मन्वन्तर—बृहदारण्यक, तथा मनुस्मृति का निर्माण-समय १, ८०, ००००० वर्ष।

ऊपर के लेख के लिए जब कोई आधार न मिला तो ऊपर के पांचों मन्वन्तरों को लकीर में घेर कर लिख दिया—"छठे मन्वन्तर की तसनीफात" और शायद जब इस के लिए भी कोई एतिहासिक लेख-बद्ध प्रमाण न मिला तो "तारीख दुनिया" में उपनिषदों के निर्माण काल पर कोई विस्तृत विचार ही न किया।

पं० लेखराम ने एक स्थान में आर्य-वृत्त सम्बन्धी सर्व इतिहास ग्रन्थों की सूची लिखी थी और मेरे साथ मिल कर वह अंग्रेजी, आर्य भाषा, उर्दू—तीनों भाषाओं में एक प्रामाणिक भारतवर्ष का इतिहास तैय्यार कराना चाहते थे।

पं० लेखराम के छोड़े नोट विचित्र "चार २ का मुरब्बा" है। कहीं तोपों के निर्माण काल का पता लगा कर उसका रामायण के काल से मुकाबिला, कहीं "खुदा की हस्ती के सबूत" में नौ प्रबल युक्तियों का खुलासा, कहीं दिल्ली की लाट

के वर्णन से आर्यों की शिल्पकारी की प्रशंसा, कहीं कुरान की आयतों की पड़ताल, कहीं समयानुकूल प्रयोग के लिए उद्धृत कविताएं, कहीं फीरोजशाह के अत्याचारों के प्रमाण की फुलझड़ी, कहीं महम्मदियों के ७२ नहीं बल्कि ७८ फिरकों की सूची, कहीं सुक्रतपन्थ के फारसी संस्कृत मिश्रित मूल मन्त्र, कहीं लाला साईं दास, लाला जीवन दास, लाला रघुनाथ सहाय, मुन्शी दुर्गा प्रसाद, मुन्शी केवल कृष्ण, थम्मनसिंह ठाकुर, लाला मुल्कराज भल्ला, हकीम बहाउद्दीन इत्यादि के बतलाए नुसखे सांप के काटे से लेकर सन्तान उत्पत्ति तक के इलाज के लिए, और कहीं वेद शास्त्रों के प्रमाणों की पञ्जिका—कहां तक लिखें, संसार में ऐसा कोई विषय नहीं जिसकी खोज करना लेखराम के कार्य की सीमा से बाहर समझा जा सकता।

तरीख दुनिया में वर्तमान सृष्टि की आयु (४, ३२, ००, ००, ०००) चार अर्ब बत्तीस करोड़ वर्ष लिखी है। इसके लिए प्रमाण में अथर्व वेद, प्रपाठक ८, अनुवाक १, मन्त्र २१ पं० लेखराम ने पेश किया है: -

शतं तेऽयुतं हायनान्द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः ।

आर्य जनता का प्रायः यह निश्चय है कि पण्डित लेखराम वेद तथा अन्य शास्त्रों के प्रमाण औरों से ढुंढ़वा कर लिखा करते थे। यह बात कैसी निर्मूल है, इसको सिद्ध करनेके लिए मैं ऊपर लिखित अथर्ववेद के प्रमाण विषय में श्री पण्डित तुलसीराम स्वामी सामवेद भाष्यकार का पत्र देता हूं। उक्त पण्डित जी लिखते हैं:---

"सं० ३१०१, ता० २०-८-१६००

श्री सन्महाशय ! नमस्ते। आपके १८-८-१६०० के लेखानुसार यद्यपि पं० लेखराम बहुत वार मिले परन्तु केवल एक वार की बात जीवन चरित्र में लिखने योग्य है कि वे अपने

विश्वास के दृढ़ थे कि सन् ६० (कुम्भ १८६१ के अप्रैल में था) कुम्भ के मेले हरिद्वार पर आवश्यक होने पर मूल-वेद को प्रतिज्ञा के साथ खोजने लगे तो एक अथर्व (वेद) का मन्त्र तत्काल कल्प वर्ष संख्या पदक ढूंढ लिया। यद्यपि संस्कृत नहीं जानते थे, तथापि) वह मन्त्र पण्डितों से पूछा तो उसी तात्पर्य का निकला।" उपनिषदों को वेद-मूलक ही सिद्ध करने के लिए उन्होंने बड़ा प्रयत्न किया था और उपनिषदों में जो मूल-वेद का भाग है उसे मोटे अक्षरों में छपवा कर यह दिखलाने का विचार था कि जैसे उपनिषद् वाक्यों को हटा लेने से गीता का कुछ नहीं बचता वैसे ही वेद मन्त्रों की प्रतीकें अलग करने से उपनिषद् समझ में नहीं आ सकते।

कहां तक लिखा जाय, सच्चे ब्राह्मण का यह लक्षण पण्डित लेखराम में कूट २ कर भरा हुआ था। दूसरा लक्षण ब्राह्मण का यह है कि जिस धर्म का निर्णय स्वयं किया हो उस को संसार में निष्कपट हो कर फैलावे। इसी लिए आर्य-पथिक आदर्श धर्म प्रचारक थे।

मौखिक प्रचार में उनकी धूम मची हुई थी। आर्य-समाज में उन धर्म-प्रचारकों की संख्या उङ्गलियों पर गिनी जा सकती है जो लेखराम के समीप इस अंश में पहुंच सकें। गृहस्थ होते हुए भी संन्यास की तितिक्षा तथा धारणा हम उनके आचरण में देखते हैं। विरोधी लोग प्रसिद्ध करते हैं कि पं० लेखराम बदजबान था। यद्यपि वह खण्डन सर्व मतों का एकसा करते थे, परन्तु हिन्दुओं, जैनियों, सिक्खों ने उन की कभी शिकायत नहीं की इसका कारण तो यह हो सकता है कि यद्यपि इन मतों के संशोधन के लिए इन मतावलम्बियों को हिलाते थे तथापि आर्य जाति के विरोधियों के आक्रमणों से इन को भी बचाने का ठेका लेखराम ने ही ले रक्खा था। एक बार मैं और

पण्डित लेखराम इकट्ठे दिल्ली से लौट रहे थे कि मार्ग में सनातन धर्म सभा के पण्डित दीनदयालु जी मिल गए। बात-चीत आरम्भ होने पर पण्डित लेखराम ने कहा—"आप हमें कोसने के लिए तो बड़े बहादुर हो लेकिन इसलाम आपके धर्म की जड़ें खोद रहा है और आप चुप बैठे हो" पण्डित दीन-दयालु जी ने उत्तर दिया—"यह काम तो हम सब ने आपके सपुर्द कर छोड़ा है; जब तक आर्य-मुसाफिर जीवित हैं तब तक हमारे धर्म की जड़ें कौन खोद सकता है।"

तब यह तो ठीक है कि हिन्दू, जैन, सिक्खादि तो उन्हें अपना समझ कर उनके कटु वचनों को सहन कर लेते थे, परन्तु यदि वह कटु भाषी होते तो मुसलमान जनता भी क्यों उनके व्याख्यानों पर मोहित होती। असल बात यह थी कि महम्मदी मौलवियों ने उनके पते की कहने और लिखने पर, उत्तर देने की शक्ति न रखते हुए, उन्हें "बदजबान" प्रसिद्ध कर रक्खा था। परन्तु जब ऐसी बहकाई हुई भी मुसलमान जनता लेखराम से प्रत्यक्ष परिचय करती तो उन पर आर्य्य-पथिक का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता।

जहां दूसरे वक्ताओं के एक घण्टे के व्याख्यान के पश्चात् श्रोता घबरा जाते हैं वहां तीन घण्टों तक आर्य्य-पथिक की वक्तृता सुनने के पश्चात् भी फिर एक घण्टा बैठने को तय्यार रहते थे। इसका कारण उनका विस्तृत ऐतिहासिक ज्ञान तो था ही परन्तु उनकी वाणी में हास्य रस और हाजिर जवाबी ऐसी मनोहर थी कि सुनने वाला कभी उकता नहीं सकता था।

हाजिर जवाबी में कमाल

जो पुरुष किसी बड़े काम में कृतकार्य होना चाहें उनके लिए "हाजिर जवाब" एक अपूर्व सम्मिलित अस्त्र शस्त्र है। जिस बात को दलील से काटने में घन्टों का नाश हो उस बात का

"हाजिर जवाबी" मिनटों में सफाया बोल देती है।

लेखराम बचपन से ही हाजिर जवाबी के लिये प्रसिद्ध थे। मदरसे में पहले साल ही परीक्षक इनकी हाजिर जवाबी से प्रसन्न हुए थे। इनके पहले उस्ताद तुलसीराम जी इसी हाजिर जवाबी से तङ्ग थे, जिसके कारण इनकी अकल (बुद्धि) की शिकायत किया करते। इस कहानी में भी कई स्थानों पर मैंने उनकी हाजिर जवाबी के नमूने दिये हैं। परन्तु उनकी हाजिर जवाबी को पढ़कर ऐसा आनन्द आता है और हमारे चरित्र नायक के इतने गुणों का पता लगता है कि उनमें से कुछ और का उल्लेख करना मनोरञ्जक ही न होगा प्रत्युत शिक्षादायक भी सिद्ध होगा।

हरिद्वार में सम्वत् १६४८ के कुम्भ पर स्वामी आत्मानन्द जी ने संयुक्त प्रान्त के छूतछात वाले उपदेशकों का चौका स्थिर रखने के लिए यह प्रबन्ध किया कि पंजाबियों से पहले यह चौके में भोजन कर लिया करें। पण्डित लेखराम उनसे भी पहले भोजन के लिये जा बैठे। तब पंजाबियों का अपवित्र किया हुआ चौका फिर से लगाया गया। दूसरे दिन भी पंडित लेखराम पाचक (रसोइए) के साथ वाली क्यारी में जा बैठे, परन्तु जब रोटी को बिना अधिक सेंके उसने चूल्हे में से खींचा तो आपने उसकी पीठ पर हाथ ठोंका और उसके हाथ से चिमटा लेकर उसे रोटी सेंकना बताने लगे। अब तो संयुक्त प्रान्तीय दल में खलबली मच गई, परन्तु कुछ संयुक्त-प्रान्तीय उसी समय आर्य पथिक के चेले बन गये और सखरी निखरी के भेदभाव को उड़ा दिया।

दिल्ली के जलसे पर एक आदमी केशर का चन्दन सब भाइयों के माथे पर लगाता आता था। जब आर्य्य-पथिक के समीप आया तो उन्होंने डांट कर कहा—"मेरे सिर में दर्द नहीं है।" उत्तर मिला—"महाराज! सुगन्धि के लिये लगाते हैं!" आर्य्य-पथिक ने दाहिने हाथ का पृष्ठ भाग सामने

करके कहा—"तो यहां लगाओ" और जब वहां चन्दन लगाया गया तो नाक के पास ले जा कर सूंघने लगे; जिस पर सब उपस्थित सज्जन मुसकिरा दिये।

एक आर्य सज्जन ने भोजन के पश्चात् सब आर्य भाइयों को ताम्बूल (पान) बांटे। जब आर्य-पथिक के सामने पान-दान पेश किया तो बोले—"देखते नहीं हो मैं मनुष्य हूं, बकरा नहीं हूं कि पत्ते खाऊं।" गुजरात आर्य समाज में आर्य-पथिक का व्याख्यान हो रहा था। मुसलमानों के "हराम, हलाल" के मसऽले पर बोल रहे थे। समाप्ति पर प्रश्नोत्तर का समय दिया गया। दो मौलवियों को तो यों ही झिंझोड़ दिया, परन्तु अन्त में मौलवी बाकर हुसेन उठे जिनकी ऋषि दयानन्द के साथ भी पुनर्जन्म पर बातचीत हो चुकी थी। मौलवी साहब ने कहा—"पण्डित साहब! आपने जो हमारे हराम हलाल के मसले पर एतराज (आक्षेप) किए हैं; क्या आपने यह भी सोचा है कि हमारे मजहब में चुहिया हराम है। क्या वह भी इसी लिए हराम करार दी गई कि जबरदस्त थी?" आर्य-पथिक ने पूछा कि मौलवी साहब सुन्नी हैं वा शिया। यह उत्तर पाने पर कि मौलवी साहब शिया हैं पंडित लेखराम ने उत्तर दिया—"मौलवी साहब! मुझे आप का कथन सुन कर हंसी आती है। आप शिया होकर चूहे की बुजुर्गी और जबरदस्ती से इनकार करते हैं। यही नामुराद चूहा था जिसने मैदान कर्बला में सब पानी की मशकें काट दीं, और बेचारे इमाम हुसैन को प्यासा मरवाया। अगर ऐसे दो तीन और जबरदस्त पैदा हो जायं तो अरब और ईरान में कई कर्बला की सी घटनाएं हो जायं।" श्रोतागण खिलखिला कर हंस पड़े और मौलवी साहब चुप हो गये।

पण्डित लेखराम जैसे श्रेष्ठ वक्ता थे वैसे ही लेखक भी अद्वितीय थे।

लेखनी का प्रवाह

धर्म-वीर आर्य्य-पथिक ने अपने नाम को सार्थक करने के लिये विचित्र लेखनी चलाई। लेखराम सचमुच लेख को लड़ा चला देता था। सम्वत् १६४१ में लेखराम ने दासत्व से मुक्ति लाभ की। सम्वत् १६५२ के अन्त में उनका देहान्त हुआ। १२ वर्षों में उन्होंने जहां लाखों नर-नारी तक वैदिक धर्म का सन्देशा पहुंचाया, और सैकड़ों छोटे बड़े लेख लिख कर आर्य्य गजट फीरोजपुर, सद्धर्म प्रचारक तथा अन्य समाचार पत्रों में छपवाए, सैकड़ों शास्त्रार्थ किये और सहस्रों को धर्म से पतित होते २ बचाया, वहां ३३ छोटी बड़ी पुस्तकें तय्यार कीं जिनके छपे हुए, सत्यार्थ-प्रकाश के परिमाण के, पृष्ठ २६२० से कम न होंगे और इसके साथ ही ऋषि दयानन्द के जीवन चरित्र के लिये न केवल ८७६ बड़े पृष्ठों के लिए लेख तय्यार करके ही छोड़े गए प्रत्युत पुस्तक की पूर्त्ति के लिए भी इतने नोटों का कोष जमा कर दिया कि उन सब से पूरा काम लेना भी कठिन हो गया।

एक विशेष कापी मिली है जिसका शीर्षक है—"आर्य्य-समाज की बीस साला रिपोर्ट।" इसके अन्दर १४ बड़े २ विषयों की सूची है जिससे ज्ञात होता है कि जो कार्य्य "आर्य डाइरेक्टरी" का आज कुछ २ होने लगा है उसको आर्य-पथिक वर्षों पहले पूर्ण रीति से करने का विचार कर रहे थे।

भविष्य पुराण की पड़ताल मैंने उन्हीं की प्रेरणा पर आरम्भ की थी और विचार यह था कि हम दोनों १८ पुराणों तथा १८ ही उप पुराणों की पड़ताल का परिणाम जन साधारण के आगे रक्खेंगे। ऋषि का जीवन चरित्र छपवाने के पश्चात् उनका विचार अरबादि देशों में प्रचार के लिए जाने का था। इसके लिये उन्होंने आर्य समाज के दस नियमों का भाष्य अरबी में लिख लिया था जो मेरे पास मौजूद है और १६ लघु पुस्तकों की सूची भी बना ली थी जिन्हें अरबी में छपवा

कर वह साथ ले जाना चाहते थे। यह लेखनी का प्रवाह बड़ा ही प्रबल है। परन्तु कहा यह जाता है कि धर्मवीर पण्डित लेखराम की "तहरीर सख्त" थी। यदि इसका मतलब यह है कि उनकी लेखनी ओजस्विनी और बलवती थी तो मुझे भी मानने में कोई संकोच नहीं, क्योंकि जिस लेख का आधार सचाई पर हो और जो केवल अपने मन्तव्यों की रक्षार्थ लिखे गये हों उनका शक्तिशाली होना आवश्यक ही है। परन्तु यदि आक्षेपकों की यह प्रतिज्ञा है कि पं० लेखराम की लेख शैली महम्मदी तथा अन्य आर्य समाज के आक्षेपकों की न्याईं अश्लील और असभ्य होती थी तो यह कहने में कोई संकोच नहीं कि ऐसी प्रतिज्ञा निर्मूल और झूठी है। मेरी तो यहां तक प्रतिज्ञा है कि पं० लेखराम अपने लेखों में कभी मर्यादा का भी उल्लंघन नहीं करते थे, तभी तो जब जब न्यायालयों में उनकी पुस्तकें पेश हुईं तब तब ही उनके विरोधियों को पराजित होना पड़ा। महम्मदी मौलवियों को उन्होंने युक्ति; प्रमाण तथा सत्यान्दोलन से ऐसा परास्त कर दिया था कि उन्होंने असली तौर पर अपनी हार मान ली और जिस लेखनी को उनकी सम्मिलित शक्ति जवाबी लेखों तथा न्यायालयों की सहायता से भी बन्द न करा सकी उसे कायर छुरी के द्वारा बन्द करा दिया।

महम्मदियों के आरम्भिक आक्रमण

(१) सबसे पहले १८८७ ई० में अमृतसर में "तकजीब" और "नुसखा" के छपने पर मुसलमानों ने बड़ी हलचल मचाई परन्तु वकीलों ने नालिश की सम्मति न दी।

(२) सबसे पहला वास्तविक आक्रमण मिर्जापुर के मुसलमानों ने किया। शुकरुल्ला नामी व्यक्ति की ओर से "तकजीब बुराहीन अहमदिया" तथा "नुसखा खब्त अहमदिया" को मुसलमानों का दिल दुखाने वाली किताबें करार देकर मजिस्ट्रेट जिला के यहां अर्जी दी। यह अभियोग बिना पं० लेख-

राम को बुलाए खारिज हो गया।

(३) प्रयाग में भी ऐसी नालिश हुई जो बिना अभियुक्त पुरुषों को बुलाए खारिज हुई।

(४) फिर लाहौर के मुसलमानों ने सं० १८६३ ई० के आरम्भ में "जिहाद" तथा अन्य पुस्तकों को लेकर, जो अरोड़ वंश प्रेस में छपी थीं, और उनमें अश्लील लेख बतला कर, नालिश की। इस मुकद्दमे में लाला लाजपतराय जी ने बड़ी पैरवी की और मुकद्दमा खारिज हुआ।

(५) फिर मेरठ के मौलवियों ने भी बड़े जलसे किये और महम्मदी जगत को भड़काया, परन्तु वहां भी नालिश करने की सम्मति वकीलों ने न दी।

(६) दिल्ली में नालिश की गई। यह नालिश २८ अगस्त १८६६ को कप्तान डेविस साहब डिपुटी कमिश्नर देहली की अदालत में पेश हुई। डेविस साहब ने वे सब पुस्तकें मंगा कर सुनीं जिनके उत्तर में पं० लेखराम ने पुस्तकें लिखी थीं और बिना ग्रन्थकर्ता तथा छापने वाले को बुलाये नालिश खारिज कर दी।

तब मुसलमानों के बड़े पुरजोश जलसे हुए, बहुत सा धन एकत्र हुआ और कप्तान डेविस साहेब के हुकुम की निगरानी की गई। वह निगरानी फिर १० सितम्बर १८६६ को खारिज हुई। इस अन्तिम फैसले में साहब मजिस्ट्रेट ने लिखा—"यह मुकद्दमा मजहबी बुनियाद पर उठाया गया है। सारे शहर में जलसे किये गये और सब प्रान्तों से मुसलमान बुलाये गये हैं जिससे आज न्यायालय में जमा होकर अपनी सहानुभूति प्रकट करें।............

'इस स्थान में यह बतलाना आवश्यक है कि पण्डित लेखराम आर्य अग्रणियों में से एक हैं ... अब इस प्रश्न के विषय में कि क्या यह पुस्तक अश्लील है या नहीं, मैंने वे सब विशेष-विशेष वाक्य अवलोकन किये जिन्हें अश्लील बतलाया जाता है। यह बात विचारणीय है कि इनमें बहुत

अधिक तो ऐसे वाक्य हैं जो कि अश्लील कहे ही नहीं जा सकते। दूसरों में प्रश्न यह है कि शब्दों का किस प्रकार से प्रयोग हुआ है........मेरी सम्मति में पुस्तक के शब्द इन (अश्लील वा असभ्य) अर्थों में नहीं लिये जा सकते......मैं निश्चय करता हूँ कि कोई भी जुर्म (अपराध) लेखराम के विरुद्ध प्रकट नहीं किया गया और इसलिये अभियोग को "जाबिता फौजदारी" की धारा २०३ के अनुसार खारिज करता हूँ"

(७) दिल्ली से निराश होकर मुसलमानों ने मुम्बई में बड़ी हलचल मचाई और दिसम्बर, १८९६ में वहां नया अभियोग चलाया। जब वह अभियोग भी बिना पण्डित लेखराम को बुलाए खारिज हो गया तब—

(८) पेशावर में धर्मवीर लेखराम रूपी ज्वलन्त शक्ति को, जो इन अदूरदर्शी दृष्टियों में इस्लाम की जड़ों को खोखला कर रही थी, सदा के लिये शांत करने का यत्न सोचा गया। पेशावर दिल्ली का मुकदमा खारिज होते ही आग भड़की थी यद्यपि पहले नालिश का ही विचार था। परन्तु जब मुम्बई के अभियोग की भी समाप्ति का समाचार आया तो फिर पेशावर, मुम्बई, अमृतसर, पटना इत्यादि सब नगरों से यह समाचार आने लगे कि मुसलमान पण्डित लेखराम को मरवा देने के मन्सूबे बांध रहे हैं।

आर्य भाइयों ने विविध स्थानों से सचेत करने के लिए लाहौर आर्य समाज को पत्र भेजे, परन्तु लेखराम की रक्षा कौन कर सकता था। धर्मवीर ने डर का शब्द अपने कोष से निकाल छोड़ा था, वे मनुष्यों की धमकियों की क्या परवा करते थे!

अन्तिम जवनिका; धर्म पर बलिदान

फरवरी, १८९७ के मध्य भाग में एक काला, गंठे हुए वदन का भयानक, नाटा युवक दयानन्द कालेज में पण्डित लेखराम को पूछता गया; वहां से पता लेकर वह पण्डित लेखराम के निवास स्थान पर पहुंचा और पंडित जी से निवेदन किया कि

वह असल में हिन्दू था, दो वर्षों से मुसलमान हो गया है और अब शुद्धि के लिये आर्य पथिक की शरण में आ गया है। पंडित लेखराम ने प्रतिज्ञा की कि वह उस पतित को शुद्ध कर लेंगे।

पण्डित लेखराम को कई स्थानों के आर्य भाई सचेत कर चुके थे कि महम्मदी लोग उनके मरवा डालने की फिक्र में लगे हुए हैं, परन्तु ऐसी चेतावनियों का पण्डित लेखराम पर उलटा असर हुआ करता था; उन्होंने इस अनजाने व्यक्ति के विषय में पता भी न लगाया कि वह कौन और कहां से आया है, और न उसी से कुछ पूछा। कुछ आर्य भाइयों ने पता लगाना चाहा जिनसे उसने अपने आपको बङ्गाली बतलाया, परन्तु प्रत्येक ८ शब्दों में से केवल दो बङ्गाली शब्द समझ सकता था। जिसने उसकी शक्ल देखी बिना सोचे कह दिया कि वह बूचड़ है। अनुमान होता था कि वह पटना प्रान्त का रहने वाला है।

यह पटनवी बूचड़ छायावत् पंडित लेखराम के साथ फिरता रहा। दो तीन बार पं० जी के घर रोटी खाता भी देखा गया। दिन को वह पंडित जी के साथ रहता था, परन्तु यह किसी को पता न था कि रात कहां काटता है। धर्मवीर के बलिदान के पश्चात् पुलिस के आन्दोलन के समय पता लगा था कि वह रात को उस स्थान में सोता था जहां कि लेखराम के वध के मनसूबे गांठे जाते थे।

१ मार्च को पंडित लेखराम सभा की आज्ञानुसार मुलतान पहुंचे जहां ३ मार्च तक ४ व्याख्यान दिए। सभा ने सक्खर जाने के लिए तार भेजा परन्तु प्लेग के कारण मुलतान समाज के सभासदों ने वहां जाने से रोक लिया; उनको क्या मालूम था कि वे सन्दिग्ध कष्ट से बचाकर अपने वीर धर्मोपदेशक को सीधा मौत के मुंह में भेज रहे हैं। फिर पंडित लेखराम मुजफ्फरगढ़ के लिए तय्यार हुए, परन्तु न जाने क्यों फिर सीधे लाहौर को लौट पड़े जहां वह ३ मार्च को दोपहर को पहुंच गए।

५ मार्च को ईद का दिन था। इससे बढ़कर, महम्मदी

मत की जड़ खोखली करने वाले को, वध करने का श्रेष्ठ दिन कब मिल सकता था। उस दिन बूचड़ घातक ने आर्य पथिक के निवास-स्थान, आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्यालय तथा रेलवे स्टेशन पर १८ वा १९ चक्कर काटे। ६ मार्च के प्रातः फिर पंडित जी के घर पहुंचा, वह अभी लौटे न थे; फिर सभा के कार्यालय में गया परन्तु वहां से भी निराश लौटा।

२ बजे पंडित लेखराम के साथ सभा के कार्यालय में फिर पहुंचा। गली की ओर मुंह करके खिड़की में बैठ गया। उस दिन थूकता बहुत था। सभा के मुनीम ने कहा—"पंडित जी! यह स्थान खराब करता है।" भोले आर्य पथिक बोले—"भाई! बैठा रहने दो; तुम्हारा क्या लेता है।"

उस दिन नियम विरुद्ध सारा शरीर कम्बल से ढके हुए था। सभा से चलते समय कांपा। पंडित जी ने पूछा कि ज्वर तो नहीं हैं। धीरे से बोला—"हां और कुछ दर्द भी है।" पंडित लेखराम उसको इलाज के लिए डाक्टर विष्णुदास के पास ले गए। नाड़ी देखकर डाक्टर ने कहा—"बुखार बुखार तो मालूम नहीं होता, इसका खून जोश में है और थकान मालूम होती है, यदि दर्द है तो प्लस्टर लगा दिया जावे।" घातक ने कहा कि लगाने की नहीं, कोई पीने की दवाई दीजिए। यदि उस समय कम्बल उतार, उसके दवाई लगवाने का विचार होता तो कमर में लगी छुरी पकड़ी जाती। परन्तु आर्य-पथिक तो स्वयं बलिदान की तय्यारी कर रहे थे, सिफारिश की कि पीने की दवाई ही दी जावे। डाक्टर ने कहा कोई शरबत पी लेवे। न जाने कहां से शरबत पिलवा कर बजाज की दूकान पर गए और इसी घातक के हाथ एक थान माता जी को दिखाने भेजा। बजाज ने घातक के चले जाने पर कहा—"पं० जी! क्या भयानक आदमी साथ लिए फिरते हो?" धर्मवीर शुद्धि की धुन में मस्त, उत्तर देते हैं—"भाई! ऐसा मत कहो; यह धर्मात्मा आदमी है, शुद्ध होने

आया है।" घर जाकर पंडित जी जिस खुले बरामदे में काम करते थे वहां चारपाई पर बैठकर जीवन चरित्र सम्बन्धी काम करने लग गए। उनकी बाईं ओर कुर्सी पर घातक बैठ गया। ६ बजे लाला जीवनदास और लाला केदारनाथ जी आए और अगले रविवार के लिए व्याख्यान की प्रतिज्ञा कराके चले गए। घातक बैठा रहा। माता जी रसोई में थीं, धर्मपत्नी जी दूसरे कमरे में भजन पढ़ रही थीं। तब पण्डित लेखराम ने घातक को कहा—"अब देर हो गई है, भाई! तुम भी आराम करो।" घातक न हिला। दस मिनटों के पीछे माता जी ने चौके से कहा—"पुत्र लेखराम, तेल नहीं आया।" पंडित लेखराम उस समय ऋषि दयानन्द की मृत्यु का अन्तिम दृश्य खींच रहे थे; पत्रे वहीं रख दिए और चारपाई पर से उस ओर उतर कर जिधर घातक बैठा था, अपने अभ्यासानुसार आंखें बन्द कर और दोनों बाहें ऊपर उठा के जोर से अंगड़ाई लेते हुए कहा—"ओफ ओह! भूल गया।"

इस समय आर्य-पथिक ऐसे सीना तान के खड़े हुए कि जिस समय की घात में दुष्ट घातक प्रतीक्षा कर रहा था, वह आन पहुंचा। एक दम से अभ्यस्त हाथ ने छुरी पेट के अन्दर घुसेड़ कर इस प्रकार घुमा दी कि आठ-दस घाव अन्दर आए और आंतड़ियां बाहर निकल पड़ीं।

परन्तु क्या आर्य पथिक इस निष्ठुर, पिशाचत्व के आक्रमण से विवश होकर गिर पड़े और अपनी चिल्लाट से मोहल्ले को जगा दिया? वहां न कोई हृदय बेधक आर्तनाद ही सुनाई दिया और न कोई चिल्लाहट की आवाज माता और धर्मपत्नी ने सुनी। यदि धर्मवीर में यह निर्बलता होती तो लोग दौड़ पड़ते और घातक उसी समय पकड़ा जाता। परन्तु वहां पतितों पर दया का भाव अभी तक स्थिर था जिसने घातक को स्पष्ट बचा दिया।

अन्तड़ियों का बाहर निकलना था कि बांए हाथ से बाहर

निकली हुईं अन्तड़ियों को सम्भाल दाहने हाथ को घातक के हाथ पर डाल दिया। साधारण पुरुष अपने रक्त के दर्शन मात्र से होश गंवा बैठता है, परन्तु वीर लेखराम सिंह पुरुष था। सिंह के अन्दर चाहे रक्त की नदी बह जाय परन्तु उसकी सावधानता में भेद नहीं आता। पहली झपट में लड़ते-भिड़ते सीढ़ी के पास जा पहुंचे और घातक के हाथ से छुरी छीन ली। घातक के दो हाथ और धर्मवीर का केवल एक, और फिर रक्त की धारा बह रही; सम्भव था कि घातक फिर छुरी छीन ले कि लक्ष्मी ने, झूठी लोक लज्जा को परे फेंक कर, हाथ जा मारा और छुरी धर्मवीर के हाथ में रह गई। लक्ष्मी देवी ने इस डर से कि कहीं घातक फिर आक्रमण न करे धर्मवीर को रसोई की ओर खींचा। परन्तु घातक के दुष्ट हृदय को इस पर भी सन्तोष न हुआ और वह खूनी आंखों से डराता हुआ फिर पीछे दौड़ने लगा, कि माता जी ने दोनों हाथों से उसे पकड़ लिया। इस समय घातक भी हांपने लग गया था और उसने पास पड़ा एक वेलना झपट कर उठा माता जी के दो तीन चोटें लगाईं। वह अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ीं और घातक सीढ़ियों से उतर कर न जाने कहां लुप्त हो गया।

कुछ पलों के पश्चात् लाला जीवनदास जी बाहर से लौटे तो बड़ा हृदय विदारक दृश्य देखा। चारपाई पर धर्मवीर सीधे लेटे हुए हैं, अन्तड़ियां एक हाथ से दबाए हुए हैं और रक्त का श्रोत बह रहा है। वृद्ध जीवनदास जी घबरा गए। फिर और लोग आ गए। परन्तु आर्य सिंह के मुख पर कोई मलीनता न थी; पूछने पर उसी सरल परन्तु वीरतापूर्ण वाणी से उत्तर दिया—"वही दुष्ट, जो शुद्ध होने आया था, मार गया।" फिर बोले—"डाक्टर को बुलाओ, शीघ्र बुलाओ।" चारों ओर समाचार फैल गया, डाक्टर तथा डाक्टरी के विद्यार्थी जमा हो गए। चारपाई पर धर्मवीर को लिटाकर हस्पताल की ओर ले चले। मैं उस दिन अकस्मात् ४ बजे शाम की गाड़ी में लाहौर

पहुंचा था, समाचार पाते ही धर्मवीर के निवास स्थान की ओर चल दिया। आगे गली के मुड़ाने पर "शहीद की सवारी" आती हुई मिली और मैं कलेजा थाम के साथ हो लिया।

हस्पताल पहुंचते ही आर्यवीर को मेज पर लिटाया गया। दुखित मन को सम्भाल कर मैं आगे बढ़ा। उस समय अन्तड़िया हाउससर्जन के हाथ में थीं। मुझे देखते ही दोनों हाथ, जो सिर के नीचे थे, उठा लिए और हाथ जोड़े मेरी अश्रुधारा निकलने को ही थी कि प्यारे लेखराम ने अपनी असाधारण वीर-वाणी से कहा—"नमस्ते लाला जी, आप भी आ गए।" इस असाधारण दृश्य ने मेरा दिल दहला दिया। अन्तड़ियों की ओर देख कर विश्वास नहीं आता था कि मैं अपने प्यारे मित्र लेखराम से बात कर रहा हूं। ऐसा प्रतीत होता था कि मानो शिमले के वार्षिकोत्सव से लौट कर मुझे नमस्ते कर रहे हैं। फिर बोले—"लाला जी बेअदबियां माफ करना" मैंने बल पूर्वक रोने धोने को रोक कर कहा—"पंडित जी! आप तो परमात्मा पर पक्का विश्वास रखने वाले हैं, प्रत्येक सङ्कट में उसी का आश्रय ढूंढा करते हैं; उसका ध्यान कीजिये।" वह वीर-वाणी उत्तर देती है—"अच्छा तो शायद मैं अच्छा हो जाऊंगा, परन्तु लाला जी! मेरे अपराध क्षमा करना।" यह कहा और वेदमन्त्र का पाठ करने लगे।

"ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव।"

मरते दम तक इस मन्त्र तथा गायत्री मन्त्र का जप करते रहे। बीच बीच में "परमेश्वर तुम महान् हो, परमपिता इत्यादि" शब्द बोलते रहे।

छुरी लगने से पूरे पौने दो घण्टों के पश्चात् डाक्टर पेरी साहब आए। फिर बराबर दो घन्टों तक डाक्टर महोदय कटी हुई आंतों को सीते रहे। एक स्थान की आंत कट कर दो टुकड़े हो गई थी, आठ बड़े घाव और बहुत से छोटे घाव भी थे।

डाक्टर पेरी हैरान थे कि दो घन्टों तक जिसके अन्दर से रक्त खुला बहता रहा हो वह कैसे जीवित रह सकता है, इस लिये उन्होंने कहा कि साधारण अवस्था में तो ऐसे घाव लगने पर कोई मनुष्य बच नहीं सकता, परन्तु जिसकी अब तक यह चेतना शक्ति है वह शायद बच जावे। यदि यह बच गया तो Miracle (चमत्कार) ही समझना चाहिये।

१½ बजे रात तक बराबर सचेत थे। केवल परमेश्वर के नाम का जप था; न घर वालों की चिन्ता और न घातक पर अप्रसन्नता और न मौत का डर। यदि चिन्ता थी तो आर्य-समाज की, और यदि ध्यान था तो उस महा-यज्ञ की ओर जो ऋषि दयानन्द रच गये थे। धर्मवीर ने न तो माता और धर्म-पत्नी की चिन्ता की क्योंकि उनको विश्वास था कि परमेश्वर उनका सहायक है और न ही घातक का पता लगाने को कहा क्योंकि जिस वैदिक धर्म के वह सच्चे सेवक थे वह बदला लेने की शिक्षा नहीं देता। अन्तिम सन्देश अपने सह-धर्मियों को यह दिया कि—

"आर्य समाज से लेख का काम बन्द नहीं होना चाहिए।"

दो बजे के समीप धर्म वीर का तौर बदल गया। दो वार जोर से हाथ हिलाये और ५ मिनटों में हाथ सीधे करके सदा की नींद सो गये।

पौ फटते ही धर्मवीर की मौत का समाचार विद्युतवत् सारे लाहौर नगर में फैल गया। क्या हिन्दू, क्या जैनी, क्या ब्राह्मो, क्या सिक्ख सब दुःखी प्रतीत होते थे। अपने प्यारे से प्यारे बच्चे की मौत पर इतना कष्ट न हुआ होगा जो इस समय आर्य सन्तान मात्र को लेखराम के वध का समाचार सुन कर हुआ। सब ने छोटे छोटे विरोधों को भुला दिया। दस बजे के अनुमान धर्मवीर के मृतक शरीर वाले कमरे के सामने का मैदान आर्य सन्तान से भर गया। वे लोग, जिन्होंने आर्य मन्दिर में कभी पैर भी नहीं रक्खा था, इस जन समूह

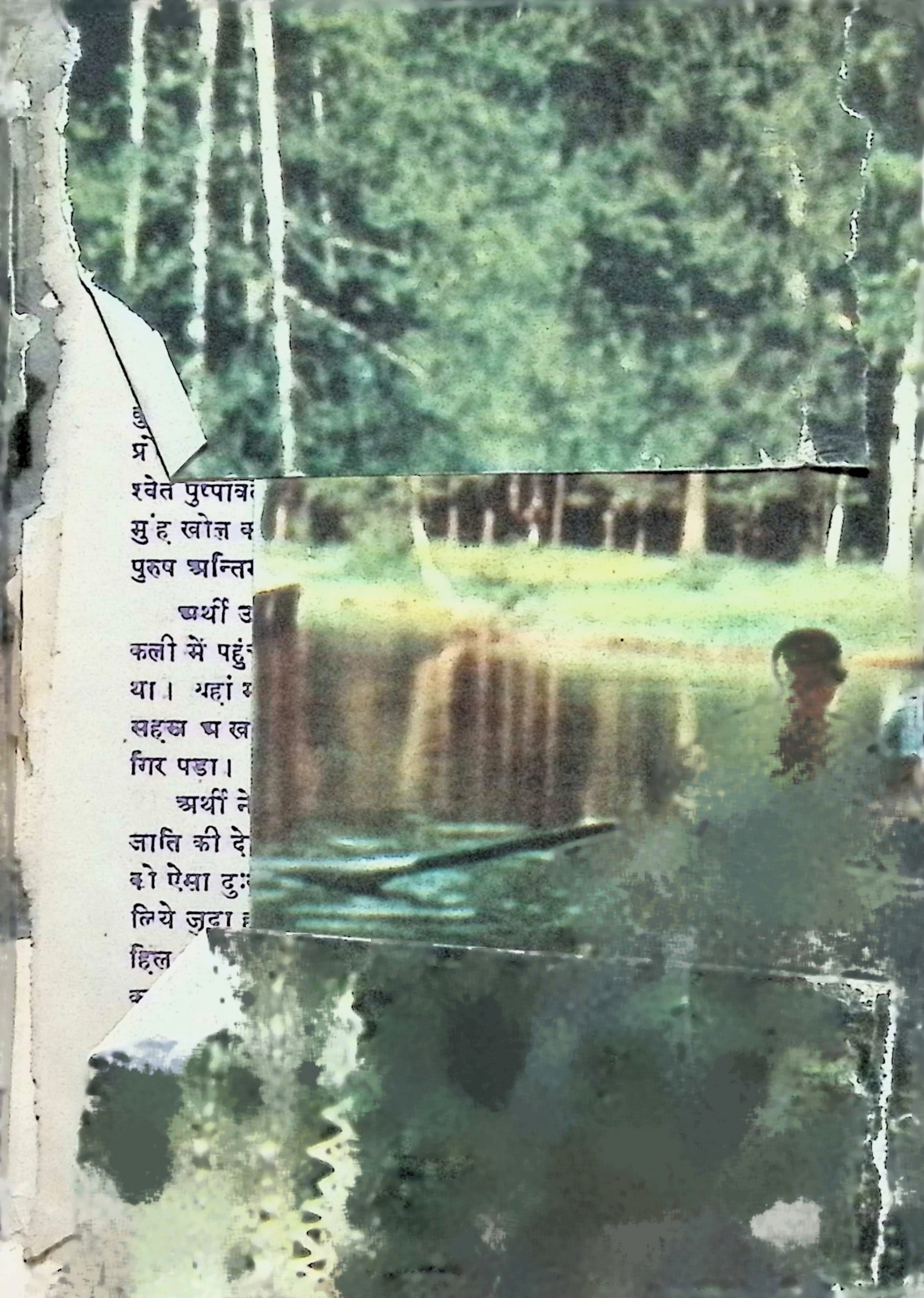
प्रे
श्वेत पुष्पाव्र
मुंह खोल क
पुरुष अन्तिर
अर्थी उ
कली में पहुं
था। यहां श
सहसा य ख
गिर पड़ा।
अर्थी ने
जाति की दे
को ऐसा दुः
लिये ज़ुदा
हिल